कथा-संग्रह

चन्द्रशेखर अरोड़ा

उषा पब्लिशिंग हाउस
जोधपुर-जयपुर

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के
आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

संचालिका	:	उषा थानवी उषा पब्लिशिंग हाउस नीम स्ट्रीट, वीर मोहल्ला, जोधपुर
शाखा	:	माधोबिहारी जी का बाग स्टेशन रोड, जयपुर
विक्रय केन्द्र	:	अमरनाथ बिल्डिंग एम. जी. हॉस्पीटल रोड, जोधपुर
आवरण	:	रेखांकन 'सारिका' से साभार
संस्करण	:	प्रथम, 1986
मूल्य	:	पच्चीस रुपये
मुद्रक	:	एम. एल. प्रिण्टर्स, जोधपुर

DUHSWAPNA
Short Stories by Chandra Shekhar Arora *Rs. 25/-*

जिनसे,
विषमताओं के कगारों पर खड़े होकर
सूरज को घूरना
फिर भी होशो-हवास दुरुस्त रखना सीखा,
उन्हीं मां और बाबूजी को
समर्पित

रचना जो है

हिन्दी-कथा-साहित्य का इतिहास यथार्थवाद के उद्भव और विकास की कथा है। प्रेमचंद ने जो परती जमीन तोड़ी थी उसमे सृजन की अपार संभावनाएं थी। 'पूस की रात' और 'कफन' का यथार्थ आज भी भीतर तक हिला कर रख देता है। यह तथ्य है कि प्रेमचद की इस विरासत का वैसा विकास हम नहीं कर पाए जिसकी हमने कल्पना की थी परन्तु यह भी तथ्य है कि युग-चेतना के विकास-क्रम को कथाकारो ने अपनी सृजनात्मकता से जो उर्जा दी है, नए यथार्थ को जो नया तेवर दिया है, वह आलोचना के केन्द्र में रहते हुए भी कही से भी निराश नही करता; बल्कि मानव-मुक्ति और जीवन-संघर्ष के प्रश्न को नए-नए रूपों में, अलग-अलग कोणों से निखार-निखार कर रखता है। आज की इस हिन्दी-कथा-लेखन-परम्परा में राजस्थान के भी कुछ युवा लेखक निरन्तर संघर्षरत हैं यथा—रमेश उपाध्याय, स्वय प्रकाश, धीरेन्द्र अस्थाना आदि। इसी पीढी के दूसरे चरण में हबीब कैफ़ी, सूरज पालीवाल, योगेन्द्र दवे आदि कुछ और तरुण रचनाकार हैं जो जीवन-संघर्ष को रचनात्मक सघर्ष मे बदलकर प्रेमचद की विरासत को निरन्तर विकास देने मे प्रयत्नरत हैं। चन्द्रशेखर अरोड़ा इसी परम्परा और पीढ़ी के एक सशक्त कथाकार है, जिनका यह पहला कहानी-संग्रह 'दु:स्वप्न' है।

इस संग्रह की कई कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे छप चुकी हैं और उन पर पर्याप्त चर्चा भी हुई है। वे और शेष अन्य कहानियां अब संग्रह के रचनाक्रम में 'सामाजिको' के सामने हैं। मैं 'भूमिका' की बैशाखी के सहारे इन कहानियों को खड़ा नही कर रहा हूं क्योंकि

इस संग्रह की प्रायः सभी कहानियां नए जीवन-यथार्थ से उर्जस्वित हैं जिनका दबाव कोई भी बैशाखी संभाल नहीं सकती। मेरी इस 'भूमिका' को आलोचना या समीक्षा भी न समझा जाए क्योंकि सम्प्रेषण की क्षमता इन कहानियों में लबालब भरी हुई है। अतः 'सर्जक' और 'सामाजिकों' के बीच 'संवाद' की स्थिति पैदा करने के लिए इन्हें किसी प्रकार की व्याख्या या विश्लेषण की जरूरत भी नहीं है। मेरे ये कुछ शब्द, इन कहानियों को सामाजिकों की आलोचनात्मक मनीषा के समक्ष रखने हेतु मात्र 'प्रस्तावना' है।

कोई भी कहानी इसलिए अच्छी और महत्वपूर्ण नहीं बनती कि उसकी रचना किसी स्थापित बड़े लेखक ने की है या फिर इसलिए वह महत्व पाने की अधिकारी भी नहीं रह जाती कि इसको किसी युवा-नए लेखक ने रचा हैं। प्रश्न यह है कि युग-यथार्थ और जीवन-संघर्ष को उस लेखक ने किस रूप में लिया है, उसे कहाँ तक समझा है, उसके साथ उसने किस सीमा तक तादात्म्य किया है और फिर, उसे रचना मे किस रूप में बदल कर प्रस्तुत किया है। हमें याद है कि 'नक्सली परिवेश' पर 'संजीव' ने मात्र एक कहानी लिखकर अपने को चोटी के कथा-लेखकों मे स्थापित कर लिया है। परिवेश के प्रति समझदारी, विचारों की ईमानदारी और इन सबको 'सर्जन' मे सहज और सीधे ढंग से बदल कर सामाजिकों के समक्ष रखने की कला मे दक्षता ही किसी कथाकार का रचना कौशल कहा जाना चाहिए। मेरा विनम्र आग्रह है कि इस संग्रह की कहानियों को इसी दृष्टि से देखा-परखा जाए क्योंकि रचना की सार्थकता 'यथार्थ' की 'फोटोग्राफी' में नहीं, उसके पुनर्सृजन में है और इस दृष्टि से चन्द्रशेखर अरोड़ा की कहानियां रचना हैं, सर्जन है।

अतः अपनी इसी प्रस्तावना के साथ यह 'रचना' आस्वादन के लिए मैं सुधी कथा-पाठकों को सौंपता हूँ और आशा करता हूँ कि इसके लेखक अपनी निरन्तर श्रम-साधना से अच्छी-अच्छी और रचनाएं हमे देते रहेंगे।

बसंत पंचमी, 1986 डॉ. विमल

वह फिर नहीं मरना चाहती

कल भी इन्तजार करवाया था शांता ने। पांच बजकर बाईस मिनट हुए तब दूर से शांता का चेहरा नजर आया। एक अच्छी खासी भीड़ के साथ वह चल रही थी। लगता था उसके चारो ओर निचुड़े हुए चेहरो की जमात-सी चल रही है। हवा मे खुश्की के साथ धूल के कण भी पैदल चलने वालों को आँखें मिचमिचाने पर मजबूर कर रहे थे।

"हिमालयन डेकोरेटर्स" जहां शांता स्टेनो थी, के ठीक सामने वाले रेस्टोरेन्ट मे मैं पाच बजे से उसका इन्तजार कर रहा था। रेस्टोरेन्ट में पश्चिमी संगीत की टूं-टा तैर रही थी।

शांता करीब आकर मुस्कराई, एक कुर्सी सीधी कर बैठ गई। हैण्डबैग को टेबुल पर रख उसे खोला। बैग से उसका हाथ बाहर

निकला तो एक कागज और एक छोटा रूमाल भी साथ निकला। कागज मेरी ओर बढाया—"दीदी का पत्र है", और रूमाल से मुंह पोछने लगी।

मुझे लगा, उस ऑपरेशन के बाद उसके चेहरे का सांवलापन कुछ हद तक धुल गया था। हो सकता है, अस्पताल से छुट्टी पाकर उसने कुछ दिन आराम किया था, यही वजह हो कि चेहरा साफ निकल आया है।

उसे देखकर एकबारगी यह नही लगता कि कुछ ही दिनों पहले उसने अपने शरीर से एक किडनी निकाल दिए जाने का ऑपरेशन झेला है।

मैंने कहा—"तुम ऑफिस में काम करती हो भी या नही ?

"क्यो ?"—उसने साश्चर्य मेरी तरफ देखा।

"अरे, सभी लोग तो ऐसे निकलते हैं जैसे उनके यहां किसी की मौत हो गई हो और तुम हो कि उछलती हुई चलती हो।"—कहकर मैं हंस दिया।

"बोर मत करो, खत पढ़ो, दीदी ने खूब डांट मारी है"—उसने रूमाल को बैग मे डालते हुए कहा।

रेस्टोरेन्ट का हॉल उस समय लगभग खाली था। मैंने बेयरे को दो कॉफी लाने का इशारा किया और पत्र देखने लगा।

पत्र की अन्तिम पंक्तियां पढ कर जब सिर उठाया तो देखा शांता ने कुर्सी से टेक लगा कर आखें बन्द कर ली है। यह उसके आराम करने की मुद्रा है। मैं जानता हूँ दो तीन मिनट से ज्यादा वह इस स्थिति मे नही रहेगी, अतः चुपचाप टेबुल पर कोहनियां टिका, उसके चेहरे की ओर देखने लगा।

मैं सोच रहा था कि रमा दीदी ने ठीक ही लिखा है—ढग से आराम नही करेगी तो मर जाएगी जल्दी ही।

टेबुल पर कप रखे जाने की आवाज सुनकर मैं सोच के घेरे से निकला। शांता शायद पहले ही व्यवस्थित हो गयी थी।

"क्या सोच रहे हो।"—उसने पूछा।

"भारत की वर्तमान अर्थ व्यवस्था पर विचार कर रहा था"—मैंने मुस्कराते हुए कहा।

वह भी मुस्कुरा दी, बोली,—"पत्र पढ़ा ?"

"हां, तुम्हारी दीदी ने लिखा है कि तुम मरने वाली हो।" उसकी मुस्कान और बढ़ गयी, मगर फिर एकदम गायब भी हो गयी। "सुनो, रात रामशरण की बीबी मर गयी। सुबह पता चला कि उसने कास्टिक सोडा घोल कर पी लिया था .. यह कल शाम की बात है। मैं घर पहुंची तब उसे अस्पताल ले जा रहे थे, बेचारी ने वहीं दम तोड़ दिया...."—शांता की आवाज में उदासी भर गयी थी। बोली —"मौसी बता रही थी कि रामशरण की बीबी के भाई ने रामशरण से कुछ रुपए उधार लिये थे, दो साल के करीब हो गए, उसने रकम लौटाई नहीं, इसी पर घर में कलह हो गयी थी....।"—शांता के चेहरे पर एक अजीब सी छटपटाहट उभर रही थी। थोड़ी देर खामोशी छायी रही। हम दोनों कॉफी के घूंट भरते चुप, एक दूसरे की ओर देख रहे थे। शांता का चेहरा ही नहीं, समूचा वजूद वेदनामय लग रहा था जैसे धीरे-धीरे ठीक हो रहे जख्म पर फिर चोट लगी हो।

कल रेस्टोरेन्ट में शांता जिस तरह गम्भीर हो गयी थी, उसके चेहरे पर खिचाव देखकर मुझे डर सा लगने लगा था। दरअसल 'आत्म हत्या' शब्द से वह कहीं बहुत गहरे से विचलित हो जाती है। उसी ने एक दिन बताया था, —"आत्महत्या शब्द मात्र सुनने या पढ़ने से मेरी आंखों के आगे मां की पथरायी आखें छा जाती हैं.... ।"

शांता की मां भी अप्राकृतिक मौत मरी थी। उसका कुसूर मात्र इतना था कि वह अपने दिनों-दिन खण्डित होते अहम् और पति की

उपेक्षा को सह नही पायी थी, ऊपर से लगातार तीन लड़कियां हो जाने पर बड़े-बूढ़ों के ताने। आत्महत्या को उन्होने इस आत्मग्लानि से बेहतर माना।

मैं अपने कमरे की खिड़की के पास बैठा कल अप्रत्याशित रूप से शांता की बिगड़ी हालत के बारे में सोच रहा था। बाहर मुन्डेर पर रखे गमलों में केक्टस सीना ताने खड़े थे मानों हमारी सामाजिक व्यवस्था पर कांटेदार प्रश्नचिन्ह लगा रहे हों।

बाहर सड़क पर दूध वाला, साइकिल पर लगा हॉर्न बजाता हुआ निकला तो ध्यान आया कि चार बज गए हैं। मैंने घड़ी पर निगाह डाली, सवा चार के करीब हो रहे थे। आज इतवार था इसीलिए इतनी लापरवाही से बैठा था।

खिड़की के मोहजाल से उभर कर मैंने हाथ-मुंह धोये, कपड़े बदले और कमरे के दरवाजे पर ताला लगा सड़क पर निकल आया।

शांता के घर पहुंचा, तब वह नहा रही थी। उसकी आदत है शाम को नहाने की। बैठक में सामने की दीवार पर शांता की माँ की तस्वीर लगी है। यह तस्वीर मैंने कई बार देखी है। अगर मुझे उसमें रंग भरने को कहा जाए तो मैं उनके चेहरे को पीला रंग ही दूंगा और उनकी आंखों को वैसे ही सूनी सफेद छोड़ दूंगा। यह रंग भरने का ख्याल मुझे ठीक उसी दिन कुरेद गया था जिस दिन पहले पहल मैंने वह तस्वीर देखी थी, और मैं शांता से पूछ बैठा था—

"तुम्हारी माँ का चेहरा हमेशा उदास रहा होगा!"—तब अचकचा कर उसने मेरी तरफ देखा था—"तुम्हे अचानक यह ख्याल कैसे आया?" उसने बड़ी गम्भीरता से पूछा।

"वैसे ही! कितना भावशून्य है यह चेहरा, कई बार तुम्हारे चेहरे पर भी यही निश्चलता देखी है।"—मैं सहज भाव से कह गया।

फिर मेरे कहने पर प्रतिक्रिया स्वरूप शांता के चेहरे पर जो भाव उभरे, उससे मुझे अपनी गलती का अहसास हुआ, मगर तब क्या हो सकता था ? शांता झुक कर अपने पांव के अंगूठे और उंगली के बीच खुजलाने लगी थी।

बहुत देर बाद हम उस दिन उस वक्त की चुप्पी से उबरे थे। कल रेस्टोरेन्ट में भी उसी तरह की खामोशी छाई थी, जब तक कि हम वहां से उठ कर नहीं चल दिये।

शाता अभी तक बाथरूम मे ही थी। मुझे रमा दीदी के खत की बात याद आ गई। कल इसके बारे मे तो कुछ भी बात नहीं हो सकी थी।

परिवेश और संस्कार की जकड़ कितनी मजबूत होती है, आदमी टूट जाए भले ही पर वह जकड़ कमजोर नही होती। शांता की दीदी के पत्र मे यही संस्कार बोल रहे थे। उन्होने शाता को किसी पुरुष का सहारा ढूंढ लेने की सलाह दी थी। हालांकि मैं जानता हूं कि विवाह के तीन ही वर्ष में तीन बच्चो की मां बनकर वे खुद मुरझा-सी गई है।

बैठे-बैठे चाय की तलब उठ आयी। मैंने शांता की छोटी बहन मुन्नी को आवाज लगायी, लेकिन जवाब में मौसी की आवाज आयी, "मुन्नी नही है, चाय का पानी चढ़ा दिया है....।"

शांता उम्र की उस दहलीज पर खड़ी थी जहां तक आते-आते आम हिन्दुस्तानी लड़की "मां" बन चुकी होती है या कम से कम "औरत" का खिताब उसे जरूर मिल जाता है। शांता को हमेशा वाले ढीले-ढाले गाउन के बजाय बाकायदा साड़ी में, हाथ मे ट्रे लिए आते देख यह "औरत" वाला ख्याल अनायास ही मेरे दिमाग मे उभर आया था।

शांता ने ट्रे सेंटर टेबुल पर रखते हुए कहा, "बहुत देर इन्तजार करना पड़ा क्या ?"

"नहीं, अभी कुछ देर पहले ही आया हूँ"—मैंने कहा, "मुन्नी कहां चली गयी ?"

"वह दोपहर में ही अपने दोस्तों के साथ बाहर गयी है। शायद फिल्म-विल्म देख कर ही लौटेगी....।"

मुन्नी की पढ़ाई—उसके दोस्त, शांता के पिताजी का ट्रांसफर, मौसी की बीमारी, और दवाई की चर्चा के साथ ही जब रमा दीदी की बात चल पड़ी तो मैंने शांता से कहा, "दीदी का कहा मानकर अब तुम शादी कर लो"—हालांकि यह कहने के लिये अंदरूनी तौर पर मुझे साहस जुटाना पड़ा।

शांता के चेहरे की सामान्य-सी दिख रही रेखाएं फिर पूर्व परिचित अटपटापन लिए मेरे सामने फैल गयी, "तुम जानते हो"—शांता अपने अन्दर के किसी तूफान को रोकते हुए बोली—"तुम जानते हो कि मैं शादी नहीं कर सकती क्योंकि मैं ...मैं मां की मौत को दोहराना नहीं चाहती .. तुम जानते हो मैं मां नहीं बन सकती....बात तुम्हारी नहीं, उन अन्धे बहरे लोगों की है जिसे न मेरी मां 'फेस' कर सकी थी, न मैं कर सकूंगी...."

अस्पताल के पोस्ट-ऑपरेटिव वॉर्ड का वह दृश्य आंखों के आगे छा गया जबकि ऑपरेशन के बाद डॉक्टर ने कहा था कि—"खतरे जैसी कोई बात नहीं है, पर हां अब से बच्चे नहीं पा सकेंगी... ऐसे केस मे—यू नो...."—उस वक्त नीम बेहोशी में भी शांता ने पलंग के किनारे बैठी रमा दीदी के साडी के पल्लू को अपने दांतों के बीच दबा लिया था... वह अपनी सिसकी दबा रही थी....रोना नहीं चाहती थी....

वह बेबसी, वह मूक छटपटाहट....अपनी अस्मिता की मौत पर वह सफेद पडे होंठों पर ठहरा हुआ शब्दहीन आक्रोश ..।

आज भी वह रोई नहीं।

☐

चाकू

उंगलियों की पोरों में दर्द जम कर बैठ गया था ।....सामने मेज पर एक चाकू गड़ा हुआ था, तकरीबन एक चौथाई चाकू मेज के तख्ते के अन्दर धंस गया था और एक कद्दावर मुट्ठी ने चाकू के दस्ते को पकड़ रखा था....। मेरे जेहन में धंसा यह चाकू अन्दर ही अन्दर सब कुछ चीर रहा है ।

कनपटी की नस फड़फड़ाने लगी थी उंगलियां स्वतः ही उस फड़कती नस को चैक करने पहुँच गई । उंगलियो के दर्द और नस की फड़कन का यह तादात्म्य बहुत आत्मीय स्तर पर था ।

चाकू....चाकू....चाकू । मेरी अन्तर्चेतना में भय इतना साफ पहले कभी नहीं झलका ।

उंगलियों में दर्द था, लगातार लिखने के कारण। एक अनुवाद है जिसे मुझे कल ही समाप्त कर देना है।

दांयी काख के नीचे एक रसोली (गांठ) हो गई है जो साहूकार के ब्याज की तरह बढ़ती ही जा रही है। कल अण्डे जितनी थी आज टमाटर जितनी, उतनी ही लाल। डॉक्टर शर्मा ने हिदायत दी है—कि कल उसका ऑपरेशन हो जाना चाहिए, वरना फिर ये ज्यादह तकलीफदेह हो जायेगी।

...चाकू के दस्ते पर बंधी मुट्ठी डाक्टर शर्मा की कलाई से जुड़ी नजर आती है...।

प्रकाशक के नोटिस (धमकी) के हिसाब से यह अनुवाद सप्ताह भर पहले ही उनके पास पहुंच जाना चाहिए था और अब डॉक्टर के मुताबिक इसे कल सुबह खत्म हो जाना चाहिए।

मैंने सुधा को जगाया। वह हड़बड़ाकर उठी—"क्या हुआ" के अन्दाज में मेरी तरफ देखा।

दिन भर की थकी-मांदी बेचारी अभी घण्टे भर पहले ही तो सोई है, गलती की इसे जगाकर—मगर—फिर चाकू जेहन मे उभर आया। मेज पर अनुवाद का कितना काम बाकी पड़ा था।

"ये काम मुझे आज ही निपटाना है, अगर तुम कुछ मदद कर दो तो...." मैं क्षमा याचना के से स्वर मे बोला।

गुड्डू की मुट्ठी मे भिचे साड़ी के पल्लू को आहिस्ता से छुड़ाकर वह उठी और मुंह धोने चली गई।

मैंने बांये हाथ से रसोली को सहलाया, हौले-हौले फिरती उंगलियो की यह छुअन भली लगी।

गुड्डू की पसलिया निरन्तर एक नियोजित क्रम मे धड़क रही थी। जिस तरह गरमी के मारे कुत्ता हांफता है, कुछ उसी अन्दाज मे

गुड्डू की सांस का आरोह-अवरोह चल रहा था, यह बीमारी उसे तीन महीने से है, डाक्टरों का कहना है कि 'कुछ नहीं' है।"

सुधा करीब की कुर्सी पर आकर बैठ गई। मैंने पाण्डुलिपि का अन्तिम अध्याय अनुवाद के लिए उसे दिया और विषय-संबंध भी बता दिया। उसने बिना कुछ कहे कागजों में सिर खपा दिया।

"कल मेरी गांठ का आपरेशन होने वाला है।"—रात साढ़े तीन बजे अपना काम लगभग समाप्त कर मैंने सुधा से कहा।

"..........................."

वह डिक्शनरी मे कोई शब्द ढूंढ़ रही थी।

"हो सकता है फिर पंद्रह-बीस दिन कोई काम न कर सकूं"

वह उसी तरह डिक्शनरी के जंगल मे खोयी रही। केवल एक हल्के "हूं" की ध्वनि जरूर आयी उस जगल में से।

"क्या शब्द ढूंढ़ रही हो ?"

"क्रिपल—सी.आर.आई.पी.पी.एल.ई."

मैंने डिक्शनरी उसके हाथ से ले ली। शब्द ढूंढ कर बताया—"क्रिपल माने अपंग बनाना, पंगु करना।"

पूरी लाइन का अनुवाद इस प्रकार था—हालात ने उसे अपग बना दिया।

"किसे ? मुझे—।" मैं सोच रहा था—"मैं भी तो पंगु बना दिया गया था। एम.ए. मे पोजीशन ली थी, परन्तु क्या हुआ, यही ना कि सिर्फ एक बार अस्सी दिन की टेम्परेरी लेक्चररशिप देकर विश्व विद्यालय ने अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कर ली और मैं आज भी बेकार हूं।""शिक्षा इन्सान के लिए मीठी खुजली है, जिसे खुजलाना भी जरूरी है और खुजलाने से घाव बढ़ भी जाता है। बेकारी का घाव बढ गया है इतना कि उसे काट कर अलग करने की नौबत आ गई है और

काटने के लिए चाहिए चाकू—बेशर्मी का चाकू—समझौते का चाकू—ज़िल्लत का, अनैतिकता का चाकू—चाकू—।

"बस ये आखरी लाइन है"—सुधा ने बहुत देर बाद होंठ खोले थे—"एक और शब्द ढूंढ दो—बगबीयर—बी.यू.जी.बी.ई.ए.आर.।"

"हौवा—बगबीयर माने हौवा या भयप्रद वस्तु"—मैं सोच रहा था जैसे कि कल मेरा आपरेशन होने वाला है।

सुधा शायद चैप्टर पूरा कर चुकी थी, उसने पेन रख दिया। मेरी ओर देखने लगी—"कल तुम्हारा आपरेशन है, बाबूजी भी कल ही आ रहे हैं।"

"वे तो कह गये थे कि अब वे वहीं रहेंगे।"

"मोह इतनी जल्दी थोड़े ही टूटता है आदमी का"—सुधा ने कहा—"अच्छा अब तुम सो जाओ।"

आँखें बन्द करने पर दर्द और आतंक विशेष रूप से मुखर हो उठा।"' बाबूजी कह रहे थे—खुद को काट-काट कर पढ़ाया तुझे, चलो कल को सुखी रहेगा, लेकिन इतनी पढ़ाई भी तुझे नौकरी नहीं दिलवा सकी तो ऐसी पढ़ाई से भला फायदा क्या है, उल्टे नुकसान ही नुकसान....।

सुबह पाण्डुलिपि पोस्ट करके लौटा तो घर के बाहर ही पुलिस की वर्दी दिखाई दी।

"आपका नाम शशि है ?"—कान्स्टेबल बोला।

"हां, कहिए क्या बात है ?"—मैं डर गया था।

"आपको इन्स्पेक्टर साहब ने बुलाया है, अभी चलना होगा।"

"क्या बात है आखिर !"

"आपके पिताजी की कोई खबर है, शायद...."

"लेकिन वे तो हरिद्वार गए हुए हैं।"

"हां-हां, वहीं से खबर आई है।"

एक अनजाने आतंक से शरीर में झुरझुरी दौड़ गई। सुधा विस्फारित नजरों से हमे घूर रही थी।

पुलिस स्टेशन में घुसते ही मुझे लगा—यहा से मुझे जेल भेजा जाएगा, सजा सुनाई जायेगी, डण्डे मारे जायेंगे।

"मिस्टर शशि, इट इज ए सुसाइड केस।"

"व्हाट"—यह शायद मेरी चीख थी।

"मुझे दुःख है"—इन्सपेक्टर औपचारिकतावश बोला—"आपको शिनाख्त के लिए जाना होगा।"

... धड़ाम !! किसी पहाड़ में डायनामाइट फोड़ा गया था, बड़े बड़े पत्थर लुढक कर मुझ पर गिर रहे है, मैं अन्तिम रूप से पत्थरो के नीचे दब गया हूं....अधेरा ! अधेरा !! अधेरे मे ही लगा पिताजी भी वही पत्थरो के नीचे दबे पड़े हैं, गुड्डू भी है यानि तीनों पीढिया, सुधा भी है यानी हर पीढ़ी का सहारा भी .. सब कुछ....।

"ये हादसा यहां दक्षिणी घाट पर हुआ था"—हरिद्वार पहुँचने पर पुलिस स्टेशन इन्चार्ज ने मुझे बताया। मैंने बाबूजी की लाश पहचान ली थी। उनके चेहरे की रेखायें अब भी वैसी ही थी बिलकुल सवालिया। पूरी कानूनी कार्यवाही के बाद मैंने बाबूजी के साथ के सामान के बारे में जानना चाहा। एक हारे हुए जुआरी की भांति मैं बोला—"इनके गले मे एक सोने की चैन और कलाई पर एक घड़ी थी।"

"वह सब हमें मालूम नही, मृतक के पास जो सामान मिला वह सब इस रिपोर्ट में दर्ज है, बयालीस रुपये बीस पैसे, एक टिकट, एक दवाई की पुड़िया, किसी अखबार के वांटेड कॉलम की एक कटिंग, एक सूटकेस में कुछ कपड़े...."

मेरे जेहन में सोने की चैन और घड़ी बराबर चक्कर काट रहे थे।

....और....इन्सपेक्टर कहीं दूर से बोल रहा लगता था। □

दुःस्वप्न

शाम के झुरमुट में एक दूसरे का हाथ हाथ में लिये, कल फिर मिलने का वादा किया दोनों ने।

युवक ने युवती से कहा—"अच्छा ! कल हम यहीं मिलेंगे और अपने-अपने सपने एक दूसरे को बतायेंगे। मेरी कामना यह है कि तुम सुन्दर सपने देखो।"

"आई विश आल्सो-स्वीट ड्रीम्स, फॉर यू।"—युवती ने कहा।

वे फिर मिले।

पहले युवक ने अपना सपना सुनाया—

"अभ्रक से चमकती छोटी-छोटी पहाड़ियां देखी मैंने। उन पहाड़ियों से घिरी एक छोटी सी समतल जगह पर कई भोंपें पड़ी थीं।

मैंने हर आंख को उलट-पलट कर देखा—कुछ मेरे घर वालों की थी, कुछ मेरे करीबी रिश्तेदारो की, कुछ और। अलहदा पड़ी दो आंखें तुम्हारी थी—उनमे कुछ नमी झलकती थी। बाकी सारी की सारी बेइन्तहा सूखी-सूखी थी।

वे आंखें जो मेरी माँ की लगती थी, बीमार सी थी। उनमें कभी नमी रही होगी, मगर अब वे जर्जर हो गई लगती थी। मगर कुछ देर देखने पर मुझे उन आंखो में हरे-हरे, हल्के से, स्नेह के रेशे भी दिखे। पिताजी की आंखों में मोतियाबिन्द साफ झलकता था। वे इतनी सूखी और नीरस थी कि वे एक पिता की बनिस्पत एक व्यापारी की आंखें ज्यादा लगती थीं। अन्य घर वालों की आंखें भी शुष्क थी और शुष्कता के साथ-साथ उनमें एक हल्की सी चमक थी। यह चमक "आशा-प्रत्याशा" की लगती थीं। वैसे ये सभी आंखें कुछ न कुछ मांग रही थी मुझसे। इन आशान्वित और मांगती आंखो का इतना वृहद रूप देख कर मैं घबरा गया था। ऐसा लगा इन आखो ने अभी शरीर धारण कर लिया तो मैं कहां मुंह छुपाऊंगा। इन चमकीली पहाड़ियों पर तो हर ओर मेरा प्रतिबिम्ब है।

ये जो मेरे करीबी रिश्तेदारों की आंखें थी। कुछ लाल और कुछ एकदम सफेद और कुछ पीली-पीली मुरझाई सी। इन आंखों के वहा होने का कोई औचित्य नही था, मगर वे "जागरूक-प्रहरी" हैं, उनका हर जगह होना लाजिमी है। ये सारी आखें मुझसे सवाल कर रही थी। बहुत से सवाल। एक साथ इतने सवाल, एक साथ इतना गुस्सा एक डरावनी चिल्लाहट सा लगने लगता था। कोई भी सवाल साफ नहीं सुनाई दे रहा था। मैंने अपने कानों पर हाथ रख लिये। वे फिर भी मेरे अनगिनत "गलत" कदमों की कैफियत मांगती रही—क्यों? कौन? किससे? किसने? कब तक....?...........? मुझे लगा मैं पागल हो जाऊंगा। बहुत सारा थूक मेरे मुंह में भर आया। थूकना चाहता था, मगर यह सोच कर कि ये चमकती पहाड़ियां गंदी हो जायेंगी, मैंने थूक निगल लिया।

इन सभी आंखो मे से अचानक दो आखें अत्यधिक मुखर हो उठी। ये मेरे दोस्त की थी जो पहले तुमसे प्रेम करता था। निरीह सी ये आंखें कुछ न बोलती थी, मगर व्यंग की मुद्रा मे थी। लगता था मेरी हालत पर ये अभी-अभी हस पड़ेंगी, फिर कॉफी हाऊस मे मेरी इस अवस्था का जिक्र अपने सब मित्रो से करेंगी।

अचानक एक अबूझ जिज्ञासा जाग गयी मेरे मन मे कि इन ढेर-ढेर आंखो में से अपने होने वाले बच्चो की आंखें पहचानूं। वे आंखें मिली, परन्तु गौर से देखा तो पाया कि ऐसी भोली और सुकुमार आंखें तो किसी भी बच्चे की, किसी के भी बच्चे की हो सकती है।

एक अभेद्य भय मुझे घेर लेता है और मैं तुम्हारी आखें वहां से उठाकर, हिफाजत से अपनी हथेलियो मे रखकर, उस जगह से भाग पड़ता हूँ। मैं ज्यादा दौड़ नही सकता। गिर पड़ता हूँ। गिरने के बाद लुढकने की प्रक्रिया मे मैं उन आंखो से बहुत दूर, अभ्रक की पहाड़ियो से परे, पथरीली चट्टानो पर आ गिरता हूँ। संभल कर चमकती पहाड़ियो की ओर निगाह उठाता हू, उनकी चमक निःशेष हो जाती है, शनैः शनैः लुप्त हो जाती है। अचकचा कर अपनी मुट्ठी खोलता हूं और घबरा जाता हूँ। तुम्हारी आखें जो इन हाथो मे थी न जाने कहां गुम हो गयी थी।'

"........बस मेरा सपना यही समाप्त हो जाता है, अब तुम अपना सपना सुनाओ।"—युवक ने कहा।

युवती ने एक गहरी सास ली। उस उसास को छोड़ने मे उसकी आंखे मिच गयी।

"मेरे सपनों मे चमक नही होती बल्कि धुंधलका होता है। वैसे कल सपने मे सीढियां थी, बहुत सारी सीढियां, ऊपर को जाती-नीचे को आती सीढ़िया और उन सीढियो पर चढ़ते-उतरते हम दोनो, तुम और मै ....।

कोई एक अपूर्व वेग हमे बिना प्रयास के ही सबसे ऊची और लम्बी वाली सीढी पर चढ़ा देता। हम वहा दम लेते। फूलों को छूते, उनकी गंध महसूसते। बादलों को अंक मे भर लेते। वेग थम जाता तो उतार शुरू होता।

कभी-कभी चार सीढियां चढने मे भी हमारी सासे तेज हो जाती, हम थक जाते।

इस तरह चढ़ते उतरते हम बेहद थक जाते हैं, हमें भूख लग आती है, तो हम एक दूसरे को खा जाने वाली नजरों से देखते हैं। उस समय हम दोनो के चारों ओर एक घेरा बन जाता है, हम अपने आप में सिमट जाते हैं, न तुम मुझे खा सकते न मैं तुम्हे। थोडी देर इस स्थिति के बाद मैं सोचती—काश तुम मुझे खा सकते, तुम कह देते—"काश तुम मुझे खा सकती।' हमारे दिलों मे एक दूसरे के प्रति सहानुभूति उमड़ आती। हम मुस्करा देते। और रास्ते की खोज मे सामने वाली सीढियो से नीचे उतरने लगते।

यहां तो सीढियों का जाल फैला है! मैं चकित सी देखती रही। इस जाल में बार-बार घूम फिर कर हम वही पहुँचते जहा से चले थे। मैं सोचती यही सबसे बडा सत्य है शायद!

तुम आगे बढ़ जाते, मैं तुम्हे हाथ थाम लेने को कहती, तुम हाथ थाम लेते, मजबूती से। और हम चढने लगते ऊपर जाने वाली सीढ़ियों पर। ऊपर पहुँचने पर तुम देखते हो कि तुम्हारे ऑफिस का बॉस वहाँ बैठा है, बड़ी सी टेबल के पीछे चमडे की कुर्सी पर। तुम ठिठक गये, घबरा गये हो, उसने तुम्हे बुलाया—

"मिस्टर... ....ये अर्जेन्ट मेटर है, इसे अभी-अभी टाइप करके लाओ. ......"

"यस सर"—कहने के साथ ही [illegible] [illegible] [illegible] हो, मुझसे हाथ छुड़ा कर चल देते हो अपनी सीट की तरफ। मगर यह तो सीढ़ी का छोर है तुम्हारी सीट नहीं। मैं चिल्ला पड़ी हूँ, तुम रुक जाते हो

एक पल सोच कर हाथ मे पकड़े कागजों को हवा में उड़ा देते हो, परन्तु दूसरे ही पल उन कागजो को फिर से पकड़ने के लिये तुम छलांग लगा देते हो। मैं फिर चिल्ला पड़ती हूँ।

और मेरे और तुम्हारे बीच से सारी सीढ़ियां गायब हो जाती हैं, मैं सबसे ऊपर वाली सीढी पर, तुम सबसे नीची वाली पर। बीच में एक भी सीढो नही। तुम मेरी ओर बाहें फैलाते हो। एक अदम्य इच्छा होती है कूद पड़ने की, लेकिन पीछे से 'कोई' मुझे पकड़ लेता है। सफेद रोयें वाले इन झुर्रियोंदार हाथो की गिरफ्त मे मैं अशक्त हो जाती हूँ। मेरा सिर घूमने लगता है, आंखो के आगे धुंध छा जाती है।

और इस चक्कर मे, इस धुंधलके मे—मैं तुम्हे भी नही देख सकती और वह "कोई" भी हवा मे विलीन हो जाता है। रह जाती हूँ मैं सबसे ऊपर वाली और एक मात्र सीढी पर, और बेहद तेज हवा की सांय-सांय.......!"

युवक ने गहरी उसांस छोड़ी। और उस शाम के झुरमुट में युवती का हाथ अपने हाथ में लेकर कल फिर मिलने का वादा किया। दोनो ने हमेशा की तरह सपने देखने की कामना की।

"अच्छा, मेरी कामना है तुम सुन्दर सपने देखो।"

"आई विश आलसो स्वीट ड्रीम्स फॉर यू!" ☐

विवश वह

छंटनी !

अस्थाई मजदूरों के लिए मौजूदा लड़ाई का अन्तिम दिन। कौन मरेगा, कौन जिएगा, यूनियन के मुखिया और फैक्ट्री के मालिक जैसे "भगवानो" के हाथ होता है, यह फैसला।

इस बार की छंटनी मे उसे भी निकाल दिया गया। वह एक अदना सा मजदूर इन्सान बीड़ियां बनाने के अलावा कुछ नही जानता। विरासत मे मिला है यह पेशा उसे। बाप दिन भर बीड़ियां बांधा करता, मा जर्दा सेंकती और शाम को तैयार बंडल सेठ तक पहुंचाने का काम होश संभालते ही उसने अपना लिया था।

एक दिन बाप खांसते-खांसते मर गया तो कुछ दिन उसने इस पुश्तैनी धन्धे को संभाला और दूसरा काम यह किया कि शादी करली।

सेठ ने बड़े पैमाने पर अपना धंधा खोला। दूकान की जगह फैक्ट्री कायम की। जर्दा मशीनों पर सिकने लगा और बीड़ी बांधने का काम मजदूर लोग वहीं फैक्ट्री पर आकर करने लगे। वह भी फैक्ट्री जाने लगा। मगर दो साल उसी कारखाने मे काम करते हुए भी वह अस्थाई ही बना रह गया जबकि पिछले साल फैक्ट्री की यूनियन कायम होने के बाद लगे कई मजदूरो को पक्का कर दिया गया।

"... ...यह तो अच्छा हुआ कि राधो को भी मैंने अपने साथ काम पर लगा दिया, वरना खाने को चने भी नही मिलते।"—वह सोच रहा था और इन दिनों वह सिर्फ सोचा करता है।

—"कुत्तों के पिल्लों की माफिक कूं-कूं करते हो"—मा बच्चों को डांट रही थी। उमर ढल जाने के बाद मां की जबान में काफी नंगापन आ गया था। "वह बच्चो को गाली दे रही है या उसे"—वह फिर सोचने लगा। सोचते-सोचते मां की जगह उसने एक मरियल गाय देखी जो पड़ी-पड़ी पगुराती रहती है या बिना वजह उठकर रेत मे सींग मारने लगती।

"........अब्बी आती होगी तुम्हारी मां, जरा देर तो चुप हो लो नासपीटो, क्यों मेरी बोटियां तोड़ते हो।'—मां फिर बिफर कर सींग मारने लगी थी।

राधो कमरे मे आयी तो एकदम निचुड़ी हुई लगी। पत्नी को इस कदर खस्ताहाल होते देख उसे अपने बेकार-बेरोजगार बैठे रहने का एहसास बेहद खलने लगा। विभिन्न मुद्राओं में यह एहसास उसे असंतुलित कर देता और वह छत की ओर ताकते हुए महसूसता कि मुर्दों का एक पूरा हुजूम उसके भीतर खलबली मचा रहा है।

राधो ने खाना बना कर मा और बच्चों को खिलाया, बाकी बचा एक थाली मे डाल कर कमरे में ले आयी। उसने खाने से मना कर दिया तो राधो खुद ही खाने को बैठ गई। जितनी भूख थी उससे आधा

खाया, बाकी बचे खाने को उसने छीके मे रख दिया। "छीका, लोहे के तार के सहारे छत से लटकता हुआ छीका कितनी अच्छी जगह है, सुरक्षित, कुत्ते बिल्ली की पहुँच से दूर...."—वह फिर सोचने लगा।

हाथ-पांव धोने के बाद बत्ती बुझा कर राधो उसकी बगल में लेट गयी तो उसने करवट बदल ली, मगर राधो की बड़बड़ाहट उसे स्पष्ट सुनाई दे रही थी— "... आज फिर उस मुच्छल्ले मुनीम ने ओवरटेम के लिए रुक जाने को कहा... फिर मैं तो बोल गई कि नही चाहिए अपने को ओवरटेम-फोवरटेम।"- -उसे लगने लगा कि सारी दुनिया खाज के मारे कुत्तो से भर गई है, लार टपकाते कुत्ते, आंखे दिखाते, गुर्राते हुए कुत्ते, फिर वह डर गया कि फैक्ट्री मे कोई छीका भी तो नही है, जिससे राधो सुरक्षित रह सके। इन कुत्तों की पहुंच से दूर। उसके माथे और गर्दन पर गर्म-गर्म लावा रेंगने लगा। एक झटके के साथ वह बिस्तर पर से उठा और बाहर खुले मे निकल आया। उसने देखा मा गुदड़ी मे गुड़मुड़ी सी हुई पड़ी है। पूरी ताकत के साथ उसने जेहन पर छा रहे मुर्दो और कुत्तों को अपने से झटका देकर दूर किया फिर पास के अंधियारे मे पेशाब करने बैठ गया। उसे कुछ राहत महसूस हुई तो वापस अन्दर आकर खर्राटे भर रही बीवी के पास लेट गया।

सुबह राधो के काम पर चले जाने के बाद मा उसकी बेकारी को बाबत "मरद जात" को कोसने लगी तो वह सड़क पर निकल आया और झौंक में ढाई कोस चलकर अल्लारखे की फैक्ट्री मे काम के लिए गिड़गिड़ा आया था। वहां भी उसे "जगह नही है" के ब्रह्मवाक्य से दो-चार होना पड़ा।

अल्लारखे की फैक्ट्री से लौटते वक्त वह सोच रहा था कि उसके इर्द-गिर्द चलने वाले तमाम लोग मां से गालियां सुनकर अपने-आप में मरद जात का लेखा-जोखा करते हुए अपने अपने छीके तलाश कर रहे है।

बेरोजगार होने के बाद सड़कों पर निरुद्देश्य घूमना उसकी आदत में जुड़ गया था। मजबूरी भी एक सीमा के बाद आदत में बदल जाती है। मजबूरी के जोंको से छुटकारा पाने की कोशिश में वह विवशतावश चलता ही जा रहा है, भटका हुआ सा, एक अन्धेरे से दूसरे अन्धेरे तक।

□

पहाड़ों के विरुद्ध

हां, उसका नाम रंजना ही बताया था, रज्जो बाई।

मैं जब वहां पहुंचा, तब तक महफिल जम गयी थी। हमीद दूल्हे के वेश में कुछ अलग-अलग सा दिख रहा था। भीड़ के उस अंधकार घेरे के दायरे में घिरा हुआ। वह मसनद पर गाव-तकिये के सहारे बैठा उलझे और तीखे स्वर मे कसमसाती ग़ज़ल पर सिर हिला रहा था—"न मिलता ग़म तो बरबादी के अफसाने कहां जाते ......"

नोकदार और इस भोंड़े लहजे मे गायी जा रही ग़ज़ल को अगर रमाकांत सुन लेता तो अपना सिर धुन लेता, लेकिन वह तो अभी हवालात में है। कितनी कोशिशें की थी उसकी जमानत के लिए मगर सब बेकार।

रमाकांत को बहुत हसरत थी हमीद की शादी में शरीक होने की। उसने कहा था—"तुम लोग देखना हमीद की शादी पर मैं गाऊंगा, अपनी आवाज से लोगों को रुला दूंगा, पर चिन्ता न करो फिर हँसा भी दूंगा……" रमाकांत वाकई बहुत सुरीले कंठ से गाता था। वह आवाज तो आज सींखचों के पीछे खुद रो रही होगी।

हमीद ने मुझे अपने पास ही बिठाकर तवायफ, जिसका नाम रंजना था, का परिचय दिया—"ये रज्जो बाई है… बहुत अच्छा गाती है।"

"दुआएं दो कि मुहब्बत हमने मिट के

तुमको सिखला दी। दुआएं ."

पास बैठे किसी सज्जन (?) ने दो का नोट निकाल कर हवा में लहराया। गाने वाली लड़की उसके पास जाकर बैठ गई और उसी तीखे लहजे में बोल दोहराने लगी—"दुआएं दो…."

मैंने चारों ओर नजर डाली। एक तरफ दहेज का सामान पड़ा था—ढेर सारे बर्तन, पलग, फ्रिज, पंखे और भी पता नहीं क्या-क्या। दूसरी तरफ यह महफिल जमी थी। रेंगते कीड़ों की तरह लोगों की निगाहें एक ही रुख में बढ़ती थीं—रज्जो बाई। आंखों पर चश्मा चढ़ाए कुछ झुर्रीदार चेहरे भी एकटक उधर ही देखे या यूं कहिए कि घूरे जा रहे थे।

"रमाकांत का क्या हुआ ?"—हमीद ने मेरी बांह पकड़ कर लगभग झकझोरते हुए यह सवाल किया। जैसे उसे मेरे इधर-उधर देखने पर कोई आपत्ति हो।

"जमानत नहीं हो सकी, उस पर तोड़-फोड़ और आगजनी का इल्जाम लगाया है पुलिस ने।"

"यार वो छोड़ क्यों नहीं देता ये समाज सुधार की बातें, यूं कोई समाज सुधरता है।"

"आंदोलन तो हम सबने मिलकर चलाया था ।"—मैंने धीमे मगर छेद देने वाले लहजे में कहा, हमीद सकपका गया । झेंप मिटाने के लिए तवायफ की तरफ देखने लगा ।

हमीद के घर के बाहर ही यह 'तमाशा' हो रहा था ।

"पुच्च्च....पुच्च्च"—एक काले आबनूस चेहरे वाले व्यक्ति ने पुचकार कर तवायफ को अपने पास बुलाया और नाचने की फरमाइश की । वह खड़ी हो गयी, साडी को बदन पर कसा, कमर में पल्लू का छोर खोंसा ।

साजिन्दो ने धुन बदली और लोगों ने पहलू ।

"तेरे नाम की दो चूड़ी...."—तवायफ ने उसी तीखी आवाज में गाना शुरू किया । मैंने पहले कभी नही सुना था उस गाने को । पता नही लोग वाह-वाह क्यों किये जा रहे थे । गिलगिजे लोग गिद्ध सी मडराती दृष्टियां... ।

वह नाचती रही । उस काले-मोटे ने एक नोट जो शायद दस रुपये का था, अपने दातो में दबा लिया । मैं उत्सुकता से देखता रहा, अब वह क्या करेगी ? वह नाचते-नाचते ही उसके पास आ बैठी और काले-स्याह चेहरे पर सफेद भूरे धब्बे से नजर आते उस नोट को अपने दांतों मे दबा कर खींच लिया । मैं हतप्रभ....उफ् ! ये क्या फूहड़ पन.... । मैंने लड़की की तरफ देखा । हल्के मेकअप मे भली लगने वाली सूरत ने मुझे विचलित करना शुरू किया था—"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते—" मैं नीति सूत्रो में भटकने लगा ।

पीछे से खिलखिलाहटो का स्वर सुनाई दिया तो पहली बार पता चला कि औरतें भी बैठी है । मैंने गर्दन घुमाई तो दुपट्टा मुंह मे दबाये औरतों का एक हजूम, जो अक्सर परदे में अपने आपको छुपाये रखता है, सरे आम खिलखिलाता नजर आया ।

धिग-धिग-तक—साजिन्दा लगातार तबले को पीटे जा रहा था ।

मैंने हमीद के कान मे फुसफुसा कर पूछा—"क्या यह सब जरूरी था ?"

"हमारे यहां हर खाते-पीते घराने में शादी के मौके पर मुजरा करवाने की रीत है"—हमीद ने भी धीमे स्वर में ही जवाब दिया। मैंने फिर पूछा—'फारूख साहब के लड़के की शादी में तो नही हुआ था नाच !'

"हुआ था। शादी के दिन नही दूसरे दिन। नेताजी हैं ना। खद्दरधारी। इसलिए खुले मे नही। बंद कमरे में नाच करवाया था। सभी पहुंचे हुए नेता, अफसर और सेठ सम्मिलित हुए थे उस महफिल में। और हुआ यह कि सभी पी-पी कर लुढ़क गए। फारूख साहब को भी होश नहीं रहा कि कब नाचने वाली नाच खत्म कर अपना नज-राना लेकर चली गयी थी। सुबह जागने पर भी लोगों के सिर चकरा रहे थे। एक-एक को उनके घर जा-जाकर छोड़ना पड़ा था। तुम नही जानते"—हमीद कहता-कहता कुछ रुका और फिर नाराजगी से बोला—"तुझे क्या जरूरत है इन सवालों से उलझने की। मजा कर यार।"

तवायफ नाचे जा रही थी। उसके खुले बाल हवा मे एक घेरा सा बना रहे थे। 'आह' और 'वाह' की आवाजें माहौल में डोल रही थी। हमीद ने अपने कपड़े दुरुस्त किये। मेरी आखो में कुछ धुंआ-धुआ सा भर गया था।

× × × ×

ऐसा धुंआ भरा, घुटा-घुटा सा कमरा था रमाकांत का कि कोई ज्यादा देर बैठ नही सकता फिर भी हमारी बहस-बैठकें वहीं होती हमेशा ही। मुझे याद है हमीद एक दिन गुस्से से फट पड़ा था—"समाज क्रान्ति के लिये उत्सुक क्यों नही है, क्यो नही जागता....?'

'इसलिए कि उसे हिम्मत के साथ झकझोरा नही गया, जगाया

नही गया, उसमे हुँकार की क्षमता नही भरी गयी"—यह आवाज रमाकांत की थी।

× × × ×

हमीद के चाचा अचानक उठे और अभी-अभी पहुचे एक गंजे व्यक्ति का विनम्रतापूर्वक स्वागत किया, आदर से मसनद पर बिठाया।

रज्जो बाई ने पांच मिनट आराम किया। लोगों की फरमाइशें बुलन्द होने लगी। कुछ कंठ खांस कर बलगम थूकने लगे थे। तवायफ ने उनमे के एक फरमाइश को चुना—"तूने ओ रगीले कैसा जादू किया, पिया-पिया बोले मतवाला जिया, तूने ओ...."—वह अपनी उसी तुर्श आवाज मे गाने लगी। लोग झूमने लगे।

चाचाजी ने दस का नोट निकाल कर हवा मे लहराया फिर उस गंजे व्यक्ति के सामने रख दिया। लड़की उनके पास आकर बैठ गयी —"मुझमें समाके ये क्या किया, ओ, ओ तूने ओ...."—गाने का क्रम चलता रहा। गंजा उस तवायफ को लपलपाती आखो मे देख रहा था। उसकी ऐसी नजरो को देख कर लड़की ने दुबारा गंजे की तरफ नही देखा। वह गाने का दूसरा अतरा खत्म कर नोट उठा कर फिर बीच मे आकर बैठ गयी।

"ओ मेरे साजन, कैसी ये धड़कन...." वह गाती रही।

मन में घुटन सी होने लगी। मैं जानता हूँ कि इन लोगों के पास बहुत से तर्क, बहुत सी दलीलें है यह सिद्ध करने के लिए कि शादी का मौका तो होता ही राग-रंग के लिए है, परन्तु हमीद, वह तो बागी कहता था अपने आपको।....मन की घुटन बढती रही।

हमीद के चाचा उस गजे से बाते करने मे व्यस्त थे--'सर, वो गुप्ता एण्ड कम्पनी की फाइल मैंने देख ली है, मैं समझता हू कि उसे सप्लाई का आर्डर दे देना चाहिए और फिर वह दस परसैंट कमीशन भी तो दे रहा है"—चाचाजी की आवाज बोलते-बोलते 'हें हे-हे' करने लगी थी।

—"हां, हां-दे दो।"—गंजा अभी भी तवायफ पर नजर गड़ाए हुए था— "कल मुझसे साइन करवा लेना, मगर कमीशन के बारे में सावधान रहना, केश में ही लेना ठीक रहेगा, नहीं तो बाद मे झंझट पड़ सकता है, कई बार...."

चाचाजी "जी हा-जी हां" कहते रहे, गर्दन हिलाते रहे।

ए... ए...., ओ... का शोर बुलन्द हुआ तो मेरा ध्यान तवायफ की ओर गया। किसी मनचले ने उसका हाथ पकड़ कर अपनी ओर खीच लिया था। इस पर अन्य लोगो ने ए....ए... करके आसमान सिर पर उठा लिया। सीटियां बजने लगी थी। पाच-सात बुजुर्ग लोग जो वहां बैठे थे, उन्होने अपने चश्मे उतार कर हाथ में ले लिये।

घिन आने लगी थी इस माहौल से मुझे। अपने सोच मे मैं उस बेडियो की खनखनाहट सुन रहा था जो कि इस वक्त रमाकात के हाथ-पावों मे पड़ी होगी। जेल की अन्धेरी कोठरी में पड़े उस रमाकांत को यह गुमान भी नही होगा कि बागियों का सा बाकपन दिखाने वाले उसके साथी एक तवायफ के घुंघरूओ मे लुत्फ ढूंढ़ रहे होगे।

नाच खत्म हो गया था। रज्जो बाई अपने साथियों के बीच बैठी पसीना पोंछ रही थी।

दूल्हे मिया के लिए अन्दर से बुलावा आया। उसके साथ ही सभी लोग उठ कर चले गये, एक-एक कर।

"सुनिए!" किसी ने मुझे आवाज दी। आत्म विस्मृति की पकड़ से छूट कर मैने देखा कि रज्जो बाई बिलकुल मेरे सामने बैठी थी।

"ह .. हं....क्या बात है ?"—मैं बड़ी मुश्किल से बोल पाया था। पसीने से बदरंग हुआ चेहरा लिए वह तवायफ मेरे इतनी नजदीक बैठी थी कि उसकी सांसो की आवाज तक मुझे सुनाई देती थी।

"वो आपके दोस्त....रमाकांत—वो जेल से कब छूटेंगे"

रज्जो बाई रमाकात के बारे में इस तरह् सजीदा होकर पूछ रही थी, मानो वह उसकी कुछ लगती हो।

मुझे अच्छा नही लगा कि एक चरित्रहीन औरत रमाकात से यूं पहचान जाहिर करे—"तुम्हें इससे मतलब ?"—मेरी आवाज तल्ख हो गयी थी।

"अब देखिए ना जरा सी बात थी कि उनके आने के वक्त कोई दूसरा ग्राहक मेरे पास पहले से बैठा था. अब ये तो हमारा धन्धा है हम किसी को नाराज तो नहीं कर सकते. आपके दोस्त लड पडे उस आदमी से। वह रसूख वाला आदमी है, कई मन्त्रियो से उसका निकट का सम्पर्क है। उसने अपने प्रभाव का इस्तेमाल किया, जिसकी वजह से आपके दोस्त को जेल जाना पड़ा...."—आग सा सुलगने लगा था मेरा पूरा वजूद, शरीर पर जैसे करोडो चीटियां रेंग रही थी। रज्जो बाई ने फिर मुंह खोला—"आप कुछ गलत नही समझिएगा रमाकात बाबू मुझे इस दलदल से निकालना चाहते थे, यह जानते हुए भी कि तवायफ इस समाज व्यवस्था के लिए उतनी ही जरूरी है जितने कि अन्य सुविधा-साधन।"

मैं रमाकांत के बारे मे सोच रहा था कि उसकी राह मे कितने पहाड़ खड़े है। पहाड़ों की शक्लें भी कितनी जानी—पहचानी हैं, इन शक्लो मे सेहरा बांधे हमीद है, उसके चाचाजी है, चाचाजी के गजे बॉस हैं, फारूख साहब है, चश्में उतारते हुए बुजुर्ग, रसूख वाले आदमी हैं।....फिर भी रमाकात है कि इन पहाड़ो से लड़े जा रहा है।

☐

टीस का यथार्थ

दाहिने पांव के अंगूठे ने चप्पल में उभरी कील की चुभन को बड़ी शिद्दत के साथ महसूस किया और मुझे चलते-चलते रुक जाना पड़ा। बाजार मे बीच सड़क पर हाथ में चप्पल लिये यूं खड़े होना बेहूदगी जरूर थी मगर कील की चुभन अंगूठे से होकर दिमाग तक पहुँचने लगी तो रुक जाना लाज़मी था। मैं सोच रहा था कि इस तरह हर छोटी-बडी टीस इतनी जल्दी मेरे जेहन पर क्यो हावी हो जाती है ?

× × ×

हैडमास्टर की खिलाफत करने से दो बातें हुई एक तो मेरी मास्टरी की नौकरी चली गई थी, दूसरी बात यह हुई कि नौकरी जाने के कुछ ही दिन बाद मेरी सगाई टूट गई।

सोचता था कि दोनों घटनाओं का मेरे स्वास्थ्य पर कोई असर नही पड़ा बल्कि मैं बंधनमुक्त हो गया हूँ। लेकिन फिर भी अपने आपको दर्द के महीन-महीन रेशों मे घिरा महसूस करता था।

बीरू भाई, उसी स्कूल के सीनियर टीचर, जिन्हें मेरी नौकरी छूट जाने से वास्तविक अफसोस हुआ था बोले—"अब क्या करोगे शिवा।"

निश्चिन्तता भरे लहजे में मैंने कहा था—"नींद लूंगा बीरू भाई, बहुत दिनो से चैन की नींद नही सोया।"

एक क्षण को बीरू भाई मेरा मुंह देखते रहे फिर बोले—"साले, कहानिया लिखता है तो हर वक्त डॉयलॉग ही बोलता रहता है।"

बीरू भाई को मैंने कुछ भी कहा हो मगर सच्ची बात तो यह थी कि उस दिन के बाद नींद मुझसे ज्यादा दूर रहने लगी और सगाई छूट जाने के बाद विभा का ख्याल गहरे-गहरे मे टीस पैदा कर देता था।—अब जब वह किसी और की पत्नी कहलाएगी तो मुझे कैसा लगेगा....।

× × ×

"...चलो भाई, बीच मे क्या खड़े हो"—कोई जोर से चीखा तो मेरी तन्द्रा टूटी। बाजार मे खड़ा था मैं। मैं एक तरफ हट गया। पीछे से निकल कर एक हाथ-ठेले वाला सामने आया, और आग्नेय नेत्रों से मुझे घूरता हुआ आगे बढ गया। झुंझलाहट सी तारी हो गयी थी मुझ पर। मैं अपने पावों को देखने लगा। फिर जब घर के लिए सामान खरीदने का अहसास लौटा तो चप्पल हाथ से छूट गई, जिसे पहन कर कदम झटके से आगे बढ़ने लगे।

हालाकि अंगूठे के पास उभरी कील का सिरा अंगूठे में गड रहा था मगर बिना उसकी परवाह किए मैंने बाजार का एक चक्कर लगा कर घर के लिए जो-जो सामान जरूरी था खरीद लिया।

तेज कदमों से घर लौटते वक्त मेरी आंखों के सामने लालू की तस्वीर घूम रही थी–कि उसने बोतल खरीद ली होगी और उसे अपने झोले में छुपाए ठाकुरद्वारे के मोड़ पर खड़ा मेरा इन्तजार कर रहा होगा, आज ही उसकी पत्नी पीहर गयी थी और उसने यह प्रोग्राम बना डाला।

सुबह घर से बाहर बुलाकर उसने मेरे कान में फुसफुसाकर कहा था—"*शाम को बोतल हलाल करेंगे, सात बजे ठाकुरद्वारे के पास मिल जाना।*" मैं समझ गया आज उसकी बीवी घर पर नहीं है, फिर भी मैंने उससे पूछ ही लिया—"*लगता है भाभी कहीं बाहर गई हैं।*" 'हां'—वह गर्मजोशी से बोला—"*रुक्को अपने बाप के यहां गई है, तुम वक्त पर आ जाना, जश्न मनायेंगे।*"

सात तो अब बजने ही वाले होंगे, हल्का हल्का अन्धेरा घिर आया था, मैंने अपनी रफ्तार तेज की। लगभग दौड़ने की सी स्थिति में आ गया था मैं।

घर पर सामान पटक कर, बाहर निकलते समय जब मैंने माँ से कहा था कि नाके पार कीर्तन में जा रहा हूँ, रात को नही लौटूंगा। तब मा ने बहुत तीखी नजरों से मेरे चेहरे का मुआयना किया था, जैसे वह जानती हो कि मैं झूठ बोल रहा हूं, वह कुछ बोली नही तो मैं निकल आया।

मैं जब ठाकुरद्वारे के मोड़ पर पहुंचा, उस समय लालू सब्जीवाली से उलझ रहा था। वहा पहुच कर मैंने भी लालू के साथ उस छेड़खानी के माहौल को कुछ देर और गरम रखा। लालू ने आधा किलो प्याज तुलवाए और उन्हे भी बोतल के साथ झोले में भर लिया।

पैसे चुका कर वहा से निकले, अब घर पहुँचने की जल्दी थी इसलिए पाव अपने आप तेज गति से चल रहे थे, तब अंगूठे मे चुभती कील का अहसास फिर सालने लगा।

"गुंडई की भी हद होती है।"—पीछे से किसी ने मेरे कन्धे पर अपना पंजा गडाते हुए कहा। एक पल को मैं सकते मे आ गया, सिर घुमा कर देखा तो बीरू भाई की मारक मुस्कान से सामना हुआ।—"मैं सब देख रहा था, सब्जीवाली को तुम लोग....मैं कहता हूँ छिछोरपन कब जायेगा तुम्हारा।"—बीरू भाई ने गम्भीर आवाज में कहा।

हम दोनों इधर उधर झांकने लगे मानो चोरी करते रंगे हाथों पकडे गये हों।

"बीरू भाई बीच सड़क पर इज्जत मत उतारा करो यार"—लालू ने संयत होकर ज़रा सख्त आवाज में कहा।

"ठीक है आगे से घर में या कहीं वीराने में उतारा करेंगे।"—कहकर बीरू भाई हंस दिये—"साले इस देश मे इज्जत अब रही किसके पास है। हम लोगों ने उसे इतना भोगा और नोचा है तो क्या वह जिंदा रह सकती थी और वो क्या था जो अभी अभी सब्जी की दूकान पर हो रहा था, किसकी इज्जत बढा रहे थे, अपनी या सब्जी वाली की...."—बीरू भाई ने लालू को चुप रहने को मजबूर कर दिया था।

लालू का घर करीब आया तो मैंने बीरू भाई को भी 'पीने' की दावत दी।

"आओ, चलो बैठेंगे तुम लोगो के साथ आज।"—बीरू भाई मुस्कराते हुए बोले। मुझे एक बार आश्चर्य जरूर हुआ। बीरू भाई के पीने पर नहीं, पीते तो वे लगभग हमेशा ही मगर घर पर ही, अकेले में, किसी के साथ पीने के लिये हा कहने पर ही मेरा आश्चर्य जागा था।

लालू के कमरे मे दो खाटें बिछी थीं। एक पर बीरू भाई ने कब्जा किया, एक पर मैं और लालू बैठे। बोतल हलाल होने लगी। प्याज का एक कतरा टूंगते हुए बीरू भाई अचानक बोले—"यार शिवा, तेरी कहानियां आजकल कौन से खेत मे चर रही है। चरती

भी हैं या भूखी रहती हैं, या कि इधर उधर कचरे के ढेर में मुंह मारती है।'

लालपरी ने गले से उतर कर रंग दिखाना शुरू कर दिया था। मैंने बीरू भाई की बात का जवाब नहीं दिया। वे छत को घूरते रहे और घूंट-घूंट शराब गले से नीचे उतारते रहे। फिर एक सिगरेट सुलगा कर बैठ गये। अचानक उनके माथे को सलवटें गहरी होने लगी। लकीरों का एक जाल सा बिछ गया था वहां। आंखों में कुछ चमक आ गयी।

तीनों पर नशे का झीना-झीना सुरुर हावी होने लगा था। बीरू भाई के रूपान्तरण की प्रक्रिया जारी थी। शायद वे कसमसा रहे थे, कुछ कहने को। मानसिक उद्वेग की चिंगारियां उनकी आंखों मे कौंध रही थी। मैं किसी निर्णय पर पहुंचता उससे पहले एकाएक उन्होंने हवा मे हाथ लहराया और बोले—

"हाए-हाए वो हुश्नो जमाल।"—और चुटकी बजा दी उंगलियो मे फंसी सिगरेट की राख झड़कर उन्हीं के सिर पर जा गिरी।

लालू कुछ सकुचा गया था कि बीरू बाई को नशा ज्यादा तो नही चढ गया।

बीरू भाई ने फिर हाथ लहराया—'हाये-हाये वो हुश्नो जमाल।' फिर चुटकी बजा दी मगर इस बार सिगरेट उनकी उंगलियों की गिरफ्त मे नही थी। उनका हाथ नीचे आया तो मुट्ठी बंद और दो उंगलियां मेरी तरफ तन कर स्थिर हो गई—"इधर जो तुमने किस्सा कचरा लिखा है, यार उसमें न तो कोई औरत है और न औरतपन।" वे शिकायत के स्वर मे बोले। वे काफी 'मूड' में आ चुके थे।

मैंने शराब का एक लम्बा घूंट भरा। बीरू भाई की तरफ देखा, उनकी आंखों मे सवाल टंगा था। मैं बोला—"हर कहानी में नायिका हो ही यह जरूरी तो नही।"

"यार फिर भी कोई जनाना खुशबू, कोई रूमाल, क्लिप, रिबन, चूड़ी कुछ तो होना ही चाहिए।"

लालू बीरू भाई की तरफ टुकर-टुकर देखे जा रहा था, हालांकि अब सकुचाहट का भाव नहीं था। मैं सोच रहा था कि अगर नशा ज्यादा हो गया तो बीरू भाई घर कैसे जायेंगे। घर नही जायेंगे तो इसी कमरे को आबाद करेंगे और फिर मुझे और लालू को एक ही खाट पर सोना होगा।

बीरू भाई ने फिर सिगरेट सुलगा ली। मेरी ओर झुककर बड़े रहस्यपूर्ण अंदाज में बोले—"जनानापन प्यार करने लायक होता है और सहानुभूति के काबिल भी, चाहे किसी तरह का धोखा ही क्यों न हो और फिर तुम तो लेखक हो तुम्हें तो इन सभी बातों की समझ है।".... उन्होने एक क्षण चुप रहकर फिर वही "हुश्न-ओ-जमाल" वाला फिकरा बुलन्द किया।

"यार शिवा, माना कि तू अच्छा लिखता है, मगर जो लिखता है उसमे बदबू, बेकारी, राशन और दुनिया भर के दु:ख होते है, उनमे प्रेम कहां है, मेरे जैसा प्रेमी कहां है।" सिगरेट का आखरी कश खीचकर बचे टुकड़े को कमरे के कोने मे उछालते हुए बीरू भाई बोले—"दो लड़कियां आयी थी जिंदगी में, एक बहन बनकर चली गई, वह घबरा गई थी दुनिया वालों के तानो से और एक दिन राखी बांध गई इस हाथ पर।"........ उन्होंने अपना दांया हाथ आगे किया .. .... "दूसरी को क्या बनना था क्या बन गई".. ..... वे कुछ रुके, लम्बी उसांस छोड़कर बोले—"क्या पागलपन लेकर बैठ गया मैं भी, मगर शिवा औरत वास्तव में होती प्यारी चीज है।"

लालू को इन सारी बातों से कोई मतलब नही था, वह सो चुका था, मैंने सिगरेट सुलगाई। अचानक बीरू भाई फिर फटे—"ये जो तुम्हारे हाथ में है, माचिस, ऐसी देश के लाखों करोड़ों हाथों में माचिसें हैं, जिनकी हर तीली में रोशनी छिपी पड़ी है मगर जलाना

कोई नही जानता, और फिर उन यारों का क्या करें जो माचिस भी मांग कर उधार कर रोशनी में जीने के आदी हो गये हैं।'' पता नही क्यो दार्शनिकता झरने लगी थी उनके मुंह से। मैं आश्चर्य मे डूबा जा रहा था कि ''औरत'' की बात से माचिस का क्या ताल्लुक।

बीरू भाई फिलासफर के अंदाज में मुंह ऊपर उठाए बैठे रहे। छत की ओर ताकते हुए ही बोले—''शिवा ऐसी ही कुछ माचिसें मैंने एक औरत का सौंपी थी'''हा वह औरत ही तो थी चूंकि उसका एक पति भी था''' पति जो उधार की रोशनी में जी रहा था'''फिर पता नही क्या हुआ कि उसके घर मे अब रोजाना कदील चलती है और मेरे हिस्से मे अधेरा रह गया....त्रियास्य चरित्रम्, पुरूपस्य भाग्यम् .. । लालू अचानक उठ कर बैठ गया। हवा मे कुछ सूंघने लगा—''कही कपड़ा जल रहा है इस कमरे मे''—उसने घबराते हुए कहा। मैंने जोर से सास ली। बदबू मुझे भी महसूस हुई, खोज हुई तो पता चला कि बीरू भाई जिस बिस्तर पर बैठे थे उसकी चद्दर मे बहुत बड़ा छेद हो गया है बिस्तर का गद्दा भी कुछ जल गया था। लालू ने उस जगह पर आधा जग पानी डाला, जब उसे तसल्ली हो गयी कि आग बुझ गयी है तब फिर अपने बिस्तर पर आकर लेट गया।

बीरू भाई काफी शर्म महसूस कर रहे थे—''भाई आज मैं दो तरह के नशे का शिकार हू, मुझे माफ कर दो।''—वे गिड़गिड़ा रहे थे। फिर अचानक उठे और कमरे का दरवाजा खोल कर बाहर निकल गये। उनके पैर सीधे नही पड रहे थे। मैंने उन्हे आवाज दी, उनके पीछे जाने के लिए चप्पलों को सीधा कर पाव में डाला। बाहर निकला तब तक बीरू भाई गली पार कर चुके थे। मैं वही ठिठक कर खडा रहा। उनके शरीर के डगमगाते आकार को कदम-ब-कदम खतरनाक अंधेरे मे गुम होते देखता रहा।

□

चारपाइयों के बीच संवाद

इस मुहल्ले में शाम उतरती है, तो चौक की सतह पर चारपाइयां उभर आती हैं और रात के गहराने के साथ ही आपस में बतियाने लगती हैं।

यही कोई चार-पांच चारपाइयां होंगी इस चौक में—अक्सर ये चारपाइयां पड़ौस की सात मंजिला इमारत के किसी तल्ले पर की किसी खिड़की में से आती रोशनी, आवाज़ या हंसी को पकड़ती है और उसको रेशे-रेशे कर देने की हरचंद कोशिश करती है।

"लोग देर रात तक हंसते हैं।"

"आजकल मुझे भी नींद नहीं आती।"

"तुम शादी कर लो।"

"ठीक कहते हो, मगर इस उम्र में, पर अच्छा नहीं लगता।"

"ग्राजकल तो यंग-जेनेरेशन मे कोई तमीज़ नही रही ।"

"भई जवानी चीज ही ऐसी है।"

"छोड़ो यार ! उम्र है तुम भी तो कभी........!"—एक चारपाई बातचीत के इस मुद्दे को टाल देना चाहती है । ग्रतीत की एक उदास गंध सभी चारपाइयो को सूंघने लगती है, तीसरी चारपाई ने उदासी तोड़ी—"तुम तो ये बताग्रो, सक्सेना की लड़की का कुछ पता लगा ?"

"हां वह हैदराबाद में है, सुना है उस मुसल्ले से शादी कर ली है उसने, कोर्ट मे ।"

"सक्सेना बहुत पीटा करता था बिचारी को........"

"ग्ररे ग्राज तो वह खुद पिट कर ग्राया है, पार्क मे । किसी दो नबर की लड़की के साथ बैठा था। कॉलेज के कुछ लड़कों ने देख लिया । बस, पीट दिया ।"

"ऐसा ही होना चाहिए । बीवी बेचारी दिन भर खटती है, साहब मौज मारते है । राशन तक वही लाती है।"

पहली चारपाई ने राशन का नाम सुनते ही कहा—"ये राशन वाले ने कल दूकान क्यो बद रखी । दिन भर धूप में खडा रहा, सालला ग्राया ही नही, ऊपर से बहू ने ग्रौर जलीकटी सुना दी ।"

"कुछ भी कहो ! बेटा तुम्हारा सीधा है ।"

"हाँ, तभी तो, ग्रपनी बीवी को कुछ कहता नहीं ।"

खुल्ल, खुल्ल ! कोई चारपाई बहुत देर तक खांसी ग्रौर थोडी देर के लिए सभी चारपाइया खामोश हो गई ।

"ग्राज मंगलवार था न........"

"हां, शायद, मैं हनुमानजी के मन्दिर भी गया था, ग्राज मन्दिर के ऊपर फिल्म वालो ने पोस्टर लगा रखे हैं ।"

"बडे होशियार हैं ये लोग यार ! जानते है मन्दिर से उनकी ग्रच्छी पब्लिसिटी मिल सकती है ।"

"मैंने भी देखा था... शायद हेमामालिनी की तस्वीर थी ।"

"यार ! ये हेमामालिनी भी क्या चीज है। अभी तक कुवारी है।"

"लगता है, इस उम्र में भी तुम्हारा फिल्मे देखने का मर्ज खत्म नहीं हुआ।"—दूसरी चारपाई ने टहोका मारा।

"क्या करें। दिल बहलाव का और कोई सामान नही है। वैसे भाई, ये तो सच है कि फिल्में बच्चों पर बुरा असर डालती है।"

"तुम्हें देख कर लगता है बूढो पर भी बुरा असर डालती है।"—दूसरी चारपाई ने फिर व्यग्य कसा। एक समवेत हंसी सभी चारपाइयों पर से उठ कर पास वाली इमारत की छत से भी ऊपर जाकर मिट जाती है। इसके बाद जो शांति होती है तो पता चलता है कि एक चारपाई खर्राटें लेने लगी है।"

"मिश्राजी को बड़ी जल्दी नींद आ जाती है यार !"

"थक जाता है बेचारा ! दिन भर प्रेस मे प्रूफ देखते-देखते कमर दर्द करने लगती है फिर दो-दो ट्यूशन पढाने भी जाता है ,लड़कियो की शादियां जो करनी है उसे।"

"अपनी रमा के लिए भी लड़का देखना है, तुम्हारी नजर में है कोई।"

"मेरे चचेरे भाई के लडके रवि के बारे में क्या ख्याल है तुम्हारा।"

"वह तो दादा टाइप आवारा लड़का है।"

"अरे नही, नही। थोड़ी मस्त तबियत का आदमी है और थोड़े-बहुत चंचल तो सभी होते है।"

"खैर ! छोड़ो। अभी रमा अपना फाइनल ईयर पूरा करले।"—इस चारपाई ने बहस को नाजुक होने से बचा लिया और रहस्योद्घाटन किया—"यार ! मुझे अक्सर आधी रात के बाद भूख लग आती है।"

"तो गोरमेंट ने ये सामने नल जो लगाया है तेरे लिए ! पानी पी लिया कर।"

"वही तो करता हूं।"—इस चारपाई के प्रति सभी चारपाइया सहानुभूति महसूसने लगी।

"यार, हवा नही आ रही है।"—इस बार पहली बोली।

"इन बडी-बड़ी इमारतो ने सारी हवा रोक रखी है।"

"अब तुम कम्युनिस्ट होते जा रहे हो।"—इस चारपाई ने दूसरी चारपाई पर आक्षेप लगाया।

"सच कहते हो ! अब कम से कम सही तौर पर गालियां तो दे सकता हूं।"

"रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या नही होती, तो शायद मैं भी यही कहता।"

"दुम हिलाने वाले कुछ नही कहा करते।"

तीसरी चारपाई जो अब तक चुप थी, दोनों को डाटती सी बोली "कहां राजनीति में उलझ गये। कुछ और बातें करो यार।" सभी चारपाइयां चुप हो गई। कुछ देर तक बातो का सूत्र ही नही मिला।

फिर पहली चारपाई ने बात शुरू की—"बाजार मे सभी चीजो के भाव बढ़ रहे हैं।"

"सरकार व्यापारियो के हाथ में खेलती है। कोई नई बात नही कह रहे हो तुम।"—दूसरी चारपाई ने फिर से वातावरण को भारी कर दिया।

फिर खामोशी। इस सन्नाटे मे दूर से आ रही कीर्तन की आवाजें सुनाई देती है।

"ये जागरण-कीर्तन कहा हो रहा है।"

"भई जहा पैसा ज्यादा होता है वही ये सारी चीजें होती है।"

"धर्म-भाव भी तो कोई चीज है।"

"हा है, लेकिन यह भाव समुद्र मे डूबी सिला है—जिसकी इति हम सब जानते हैं।"

"लगता है, तुम नास्तिक हो गये हो।"

तुम कैसे कह सकते हो कि मैं नास्तिक हो गया हू। तुमने भी तो भगवान की मूर्ति के सामने झूठी कसमे खाई थी और बेचारी लाजो की मिट्टी खराब कर दी।"—दूसरी चारपाई के इस अप्रत्याशित हमले से पहली चारपाई तिलमिला उठी और तीसरी घबरा गई। दोनो चारपाइयों मे काफी देर तक तू-तू-मैं-मैं होती रही फिर वे एक दूसरे की तरफ थूक कर शांत हो गई।

अचानक बिल्डिंग के किसी फ्लैट मे रोशनी होती है। खिडकी की सलाखों की प्रतिच्छाया जमीन पर काफी लम्बी पड़ती है। एकाएक उन सलाखों के बीच एक नारी आकृति अपनी सम्पूर्ण गोलाइयों में उभर आती है। तीनो चारपाइयां छिपकली के समान सजग हो जाती है—मगर छिपकलियों की तरह रेंगती नही बल्कि "कुछ" सोचकर आत्मीय सुख का अनुभव करती है—कि बत्ती छटपटा कर बुझ जाती है।

हर ओर अधेरा।

"ये रोशनीघर वाले कब सुधरेंगे।"

"लगता है पूरे शहर की लाइटें बंद है।"

"शायद देश भर में रोशनी नही है।"—दूसरी चारपाई की इस बात पर सभी चारपाइयां मंद हास्य उलीचती हैं।

"तुम भी कहां से कहां कुलाबे भिड़ाते हो।"—पहली चारपाई ने दूसरी चारपाई को स्तर पर लाने की कोशिश की।

अंधेरे मे कुछ भी साफ नजर नही आ रहा था।

"अरे भाई तुम्हारे लिये एक बुरी खबर है।"—दूसरे ने तीसरी को संबोधित किया।

"मौत की खबर हो तो मत सुनाना। मैं अभी मरना नही चाहता।"

"नही मौत की नही "लोन" की बात है। बड़े साहब ने रोजी

के लोन के लिए ग्रॉर्डर कर दिये हैं। अब तो तुम्हारी एप्लीकेशन फिर महीने भर के लिए स्थगित।"

"मैं जानता हूँ उस सूअर को। रोजी उसकी पी. ए. जो ठहरी।"

पहली चारपाई जो अंधेरे से ऊब रही थी। अपनी उपस्थिति जाहिर की—"मैंने तुम्हें पहले ही कहा था। अंधेरे में तीर मारने से कोई फायदा नही।"

अंधेरे के तीर से सक्षिप्त होती-होती बातें अंधेरे तक पहुँची। साथ ही, अंधेरा भी, चारपाइयो तक बेबाकी से पहुंचा और उन्हे पूरी तौर पर जब्त कर लिया। □

गांठें

सुमि ! कल तुमने कहा था कि इतना पराया सा क्यों लग रहा हूं मैं, बदला-बदला सा । मेरा जवाब भी तुम्हें याद होगा—कि—बहुत दिनों बाद मिला हूँ ना इसलिए—मैंने कहा था । मगर वह जवाब माकूल नहीं था । सही तो यह है कि यकीनन मैं बदल गया हूँ ।

यह परिवर्तन मुझमें आकस्मिक नहीं आया सुमि, बहुत ही व्यवस्थित रूप से इसने मेरे विवेक पर अधिकार जमाया है । एक लम्बे अन्तराल से मैं तुम्हारे बारे में सोचता आया हूँ । ये विचार, ये सोच, टुकड़े-टुकड़े, कांच के टुकड़ों से चुभते रहे हैं, टीस देते रहे हैं ।

तुम्हारी थिसिस को पढ़ते वक्त मैं तुम्हारे गहरे अध्ययन और पैनी समझ का कायल होता जा रहा था—"वाह ! भाव और शिल्प का ये सामंजस्य", इतनी विदुषी तुम अपनी बातों में तो नहीं लगती । फिर

अन्तिम चार-पाच अध्याय को पढने पर लगा था कि ये तुम्हारे लिखे नही हो सकते, कमज़ोर शब्द और भावो का उथलापन था उसमे। मैं निश्चय कर चुका था ये चेप्टर तुमने नही लिखे। मगर आश्चर्य तो उस दिन हुआ जब कुछ दिन बाद मैंने तुम्हारे नोट्स देखे तो एक बार फिर मैं असमंजस की स्थिति मे था तब मुझे महसूस हुआ कि तुम्हारी थिसिस के शुरू के अध्याय तुमने नही लिखे।

आखिर मुझे तुमसे ही पूछना पड़ा कि ये मामला क्या है और तुमने टाल दिया था। कुछ दिनों बाद मेरे फिर पूछ लेने पर तुम बिगड़ गई थी; मुझे आज भी तुम्हारे वे शब्द याद हैं—तुमने तमक कर कहा था—"शंकाओं की परतों में उलझना बेकार है, आनन्द ! किसी ने भी लिखे हों, है तो मेरी थिसिस मे, तुम्हे सशोधन के लिए दी और अगर कोई चेप्टर तुम्हे कमजोर लगता है तो उसे ठीक कर दो, मुझे पी-एच. डी. से मतलब है, चाहे कैसे भी मिले, इस थिसिस की रिपोर्ट मेरे फेवर मे आनी चाहिए।" नाराजगी की कुछ अजीब रेखाएं तुम्हारे चेहरे पर बनती-बिगडती रही। मैं खामोश हो गया।

मैं खामोश जरूर हो गया था। मगर अन्दर से उबला पड़ा था—'हाँ, यह थिसिस मुझे सशोधन के लिए ही दी है परन्तु इतना हक मेरा भी है कि मैं जान सकू'—मैं किसकी सृजन-प्रक्रिया में प्रवेश कर रहा हू, और तुम जानती हो कम से कम इस मामले में मैं उदारता का कायल नही।'

आज यह कह सकता हूं कि उसी दिन से मेरे मन मे एक गाठ पड़ गयी थी और धीरे-धीरे वह गांठ और उसके बाद पड़ी अन्य गाठें बड़ी होती गयी—आदमकद और उससे भी बड़ी।

गाठें खुल सकती थी अगर तुम मुझे बता देती कि तुम्हारे लिए *ये सब कुछ किसने लिखा है, लेकिन तुम्हारा यह दुराव-छिपाव मुझे* कोचता रहा था हर वक्त।

मैं खुद अपनी प्रशसा नही करना चाहता परन्तु इतना जरूर कहूंगा कि थिसिस के संशोधन से लेकर डिग्री एवार्ड होने और पुस्तक

छपने तक मैंने कम मेहनत नही की थी। इसे खुद तुमने एक बार नहीं कई मरतबा स्वीकारा है।

थिसिस एवार्ड होने के बाद युनिवर्सिटी केम्पस मे तुम्हारे नाम के साथ मेरा नाम जोडा जाने लगा, मतलब यह कि लोग हमारे बारे मे सोचने-बात करने लगे थे। तुम तो जानती हो हम दोनों के बीच जो सम्बन्ध थे उन्हे "दोस्ती" का नाम ही तो दिया जा सकता था लेकिन लोगो को क्या कहा जाये। उनकी चर्चाओ में हमारे जिक्र को रोका तो नही जा सकता, लोगो का कहना था कि—"मिस सुमित्रा ने अब आनन्द बाबू को भी अपने शिकजे मे ले लिया है।" मैं उस वक्त उनकी नादानी पर हंसा था, लेकिन उस वाक्य के "भी" शब्द ने मुझे चौंकाया था।

"भी" के क्या माने हुए। कोई और भी है, एक दो या दस। जो उनकी नज़र में तुम्हारे शिकार हो चुके है।

इस गुत्थी को सुलझाने के चक्कर मे मुझे विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के चपरासी की अच्छे-खासे तगडे नाश्ते के साथ खुशामद भी करनी पड़ी थी, उसी ने बताया—"कई है साहब, एक तो अपने बत्रा सर, जो आजकल जबलपुर हैं, इसी विभाग मे थे तब उनका चक्कर चला था। बत्राजी शादी-शुदा है फिर भी न जाने कैसे इस छोकरी के हत्थे चढ गये। एम. ए. में फर्स्ट डिवीजन उन्ही की बदौलत मिला है आपकी सुमित्राजी को। यहा बहुत कुछ होता है आनन्द बाबू।

ये सारी बाते मेरे लिए आश्चर्यजनक थी परन्तु मै टाल गया, यह सोच कर कि बत्रा सर से तुम्हारे अच्छे सम्पर्क को इन लोगो ने प्यार जैसी कोई भावुकता का नाम दे दिया है।

इस रहस्योद्‌घाटन के बाद भी बहुत दिनो तक मैं प्रेस के काम मे बेहद व्यस्त रहा। तुम जल्द ही थिसिस छपवाना चाहती थी ताकि वाइवा होते ही वह मार्केट में आ जाये। प्रूफ रीडिंग से लेकर गेटअप तक का सारा काम मुझे ही देखना था। सच सुमि, जब पहली बार यह

काम हाथ मे लिया था तो मैं बहुत खुश था, तुम पर गर्व हुआ था बाद मे तुम्हारे रहस्यों को जानने के बाद एक वितृष्णा-सी घर कर गई थी मेरे मन में....

इधर अचानक मेरे लिए जबलपुर से एक नौकरी के लिए इंटरव्यू कॉल आ गया था और इस बार मै तुम्हे बिना कुछ बताए ही चला गया। वहां मैं बत्रा सर से भी मिला, उन्होने जो कुछ बताया वह घृणास्पद था।

कितने—कितने परदे मेरी चेतना पर से हटते जा रहे थे। तुम्हारे सारे पत्र उन्होंने मुझे दिखाये—"ये देखो वह मुझसे शादी करना चाहती थी और वास्तव मे वह पत्र तुम्हारी हैण्डराइटिंग मे ही था और भी कई पत्र जिनमें रुमानियत आदर्शात्मक लहजे मे भरी पड़ी थी, फिर उन्होंने मुझे वह सामग्री भी दिखाई जिसके आधार पर तुम्हारी थिसिस के लिए पन्द्रह-सोलह चेप्टर लिखे थे। बत्रा सर ने मुझे यह भी बताया कि उन्होने भी ऐसे कई पत्र तुम्हें भी लिखे हैं और इस पत्राचार का सिलसिला काफी समय तक चला था। 'मिस्टर आनन्द, मै बहुत बरबाद हुआ हूँ इस लड़की के लिए।"—बत्रा सर यह कहते हुए बस रोये नही, इतना भर आये थे।

बत्रा सर मेरी नज़र मे अपना आदर खोते जा रहे थे और इसी अनुभूति से उबलता एक ही सवाल किया था मैंने उनसे—'सर, आपने एक विवाहित और जिम्मेदार आदमी की तरह क्यो नही सोचा।' उनका कहना था कि—ये दिल के मामले ऐसे ही होते हैं, सोचने का वक्त तब आता है जब सब कुछ खत्म हो चुका होता है, काच की हवेलियां खंडहरों मे बदल चुकी होती हैं।

मैं सोचता रहा क्या दिल के ये नामुराद मसले इतने खतरनाक होते हैं।

इन परदों का गिरना अभी बंद नही हुआ था कि बत्राजी ने तुम्हारे एक पत्र की फोटोस्टेट कॉपी मेरे हाथ मे थमा दी, वह पत्र भी

लगभग उसी शब्दावली मे रायपुर के किसी सत्यप्रकाशजी को लिखा गया था। पत्र के बारे में अधिक जानकारी बन्ना सर ने ही दी—मसलन कि ये सत्यप्रकाशजी अच्छे साहित्यकार हैं और साहित्य अकादमी की किसी समिति के सदस्य भी हैं। उनसे तुम्हे अपनी रचनाओ के प्रकाशन में सहायता मिलती रही है और सुना है कि साहित्य अकादमी की कार्यकारिणी मे तुम्हें शामिल करने की योजना भी उन्होने बनायी थी।

परदे गिरते रहे, उन तमाम परदों के आगे एक निस्सीम खुलापन था अब मेरे सामने, और फैलाव में कितने-कितने चित्र थे तुम्हारे, आवरणबद्ध, आवरणहीन, भावप्रवण आखों वाली सुमि, रंगहीन आंखों वाली सुमि। फिर एकाएक सारे चित्र इस तरह बिखरे मानो शीशे के बने हो और अज्ञात झटकों से खण्ड खण्ड हो गए हो। उस निस्सीम में फिर रह गया था मात्र अंधेरा, घना अधेरा।

परसो ही लौटा था जबलपुर से और आज तुमसे मिलने चला ही आया। बहुत कुछ कहने की इच्छा थी, मगर फिर तुम्हारी मान्यताओ को याद करके कि 'कैसे भी हो, काम निकलना चाहिए।' मैंने इस अप्रिय प्रसंग को टाल देना ही उचित समझा।

सुमि ! आज तुम्हें यह सब बताते वक्त कह सकता हूं कि बहुत सी दुर्बलताए बेख्याली मे जड़ पकड़ती जाती है, यहां तक कि खोखला कर देती है आदमी को और इस तरह की रूमानी भावुकता बांटने वाला कभी सहभोक्ता नही हो सकता।

वे गाठें जो तुमने खोलने से इन्कार कर दिया था अनायास ही खुल गयी या टूट गयी या कि और उलझ गई हैं, मैं कह नही सकता।

☐

गरजता सांस लेता समुद्र

तीन तरफ से समुद्र से घिरे इस महानगर मे पिछले पांच दिनों से साथ आये लडकों के साथ घूमता रहा। आज अकेला हूँ....।

वीर नरीमन रोड की एक सात मंजिला इमारत मे उतर कर, अपनी खीझ पर काबू पाने की कोशिश में, मैं मुंह में भर आये थूक को बार-बार थूकता जाता था। अन्तःस्थल से विकलता के गुबार निकल कर होठों तक आते और मैं उन्हे थूक देता।

इस इमारत के तीसरे माले पर एक शानदार ऑफिस के हॉल मे बीच वाली टेबल के पीछे कागजो में खपा सिर जब मेरी आहट से पहली बार ऊपर उठा तो उस चेहरे पर खुले और साफ आसमान-सी वास्तविक आत्मीयता झलक उठी थी, मगर कुछ ही क्षणों बाद होठो पर फैली मुस्कान की लकीर कुछ मैली सी लगने लगी। साफ आसमान को बादलो ने गन्दा कर दिया हो जैसे।

सेवक अंकल कितने अन्चीन्हे लगने लगे थे—औपचारिकता भरे शब्दों में यह पूछते कि—"यहा कैसे आ गये। ठहरने का इन्तजाम कहा किया है, तुम तो जानते हो मेरे पास एक ही कमरा है, कहां रहोगे...."मुझे लगा कि इस महानगर का समुद्र यहां आकर छिछला हो गया है। अंकल के व्यवहार को देखकर उन्हें गले लगा लेने की इच्छा को मुझे दबा देना पड़ा।

मैंने अपने आपको सहज बनाये रखा—"कॉलेज से एज्युकेशनल टूर पर निकले लड़कों के साथ आया हूँ, बिड़ला हॉस्टल में टिके हैं सभी लड़के, मैं भी वही हूँ बोरीवली में।"—मैंने कहा हालांकि मैं कहना चाहता था कि—मैं दो दिन तुम्हारे साथ रहूँगा, या कि मैंने अपने साथी प्राध्यापको को पटा लिया है यह कहकर कि मेरे अकल यही सेटल हैं, उनके पास एक-दो दिन नही रहा तो वे बुरा मान जायेंगे। चाह कर भी यह सब नही कह पाना उस वक्त मेरी मजबूरी बन गयी थी। कंठ मे बलगम भर आया था।

अंकल ने अपने सामने पड़े कागज तह कर ट्रे मे रखे और एक दूसरी फाइल अपने सामने रख कर, उस पर पेपरवेट रखा और बोले—"मैं तो शाम तक फ्री हो सकूंगा। तुम अपनी चाची से मिल लेते मगर घर यहां से बहुत दूर है, भाण्डुप में, कहो तो कल सुबह बिडला हॉस्टल आ जाऊं वही बात करेंगे....।

अंकल की मन: स्थिति को देखकर कई-कई चिन्गारिया मेरे मन मे कौंधती रही रिश्ते-नाते की, दोस्ताने की, कई दीवारो को पार कर आयी पुरानी स्मृतियों की चिंगारियां....

....उस दिन बंटवारा हुआ था। क्या वह बंटवारा था, मैं नही समझ सका। पितृ-भक्त मेरे पिताजी ने दादाजी के हर निर्णय को नत-सिर स्वीकार किया था।

दादाजी कह रहे थे—"सेवक को तुम बीस हजार रुपया दे दो और चार तोला सोना भी। मै तो परदेश जा ही रहा है सो ये मकान

ग्रौर जमीन तुम्हारे पास रहेगी ही"—पिताजी ने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति दी।

"ये बंटवारा था ?"

उस कस्बाई जमीन ग्रौर छोटे से मकान की कीमत दस-बारह हजार होगी। ये बातें ग्रौर निर्णय बड़े ग्रौर बुजुर्ग लोगों के बीच हो रहे थे। मेरी राय वहां क्या माने रखती, कुछ नहीं।

उस दिन, मैं सड़कों ग्रौर गलियों में बेमतलब भटकता रहा, राह चलते हाथ में पत्थर उठाकर दाना चुगते कबूतरों पर मारता रहा।

उस दिन, पिताजी ने बिना ना नुकूर किए दादाजी की आज्ञा का पालन किया। यह भी नहीं कहा कि हिस्सेदारी बराबर होनी चाहिए, कि मेरे सिर पर दो बेटियों का बोझ है जबकि सेवक पर कोई दायित्व नही फिर उसे अधिक क्यों मिले।

सेवक अंकल मुझसे कुल चार साल बड़े हैं ग्रौर मुझसे पहले खानदान में वे ही इतना पढ़े-लिखे हैं। उन्होंने जब बी. एस-सी. की तब मैंने कॉलेज में कदम रखा था ग्रब वे इधर बम्बई मे जमे हैं ग्रौर मैंने एम. ए. करने के बाद उसी कस्बाई कॉलेज मे नौकरी कर ली थी।

शादी के बाद से ही इस कस्बे से निकले सेवक अंकल फिर नही लौटे....

× × ×

. पुरानी स्मृतियो से उभरते ही न जाने कैसे मेरे मुंह से निकला —"ठीक है कल ही मिल लीजिएगा" बिना ग्रभिवादन किए मैं उठ ग्राया था। अंकल ने मुझे रुकने के लिए नही कहा—"उन्हें रोकना चाहिए था, कम से कम घर के हाल-चाल तो पूछने चाहिए थे, ग्रात्मीयता न सही जानकारी के नाते ही पूछ लेते।"—मैं सोच रहा था।

सड़क पर भीड़ ग्रा रही है, भीड जा रही है। बसें, कारें सूं-सूं करती ग्राती है, ब्रेक चरमराते है, गाड़ियां रुकती है फिर चल देती हैं।

पता नही इतने सारे लोग घर से आ रहे हैं या घर जा रहे हैं ? मैं अनगिनत सवालों की जिल्दो में कैद होता रहा। यह समूचा शहर अपनी उसी रफ्तार के साथ मेरे आर-पार से गुजरता रहा।

× × ×

उस बिल्डिंग से ही बादलो के दो सफेद टुकड़ों ने मेरा पीछा करना शुरू किया था। यहाँ तक कि मैं बस से सफर कर यहां मेरीन ड्राइव पर समुद्र के किनारे आ बैठा हूं, बदतमीज बादल अब भी मेरे सिर पर मंडरा रहे हैं।

फिर मुंह मे थूक भर आया था, मैंने उछलती समुद्र की लहरो पर थूक उछाल दिया और कनपटी के पास चुहचुहा रहे पसीने को हथेलियो से पोंछ दिया।

दोपहर को बम्बइया खाना 'राइस प्लेट' खाया था, कुछ भारी हो गया लगता था, बदन शिथिल हो रहा था। समुद्री हवाएं भी शरीर में सुस्ती भरने लगी, मैं किनारे की दीवार पर पानी की ओर पांव लटका कर बैठ गया। अब शहर की आपाधापी की ओर मेरी पीठ थी। मैं आश्वस्त हो रहा था—भाड़ में जाये ये महानगर, यहां के लोग, अब मेरे पीछे कुछ भी हो जाये मेरे ठेंगे से।

सूरज ठीक मेरे सामने था मगर समुद्र के पानी मे थोड़ा ऊपर। मैं इंतजार करने लगा कि कब यह आग का गोला पानी मे डूबे और एक जोरदार छन्न की आवाज सुनाई दे। मैंने अक्सर देखा है कि लुहार जब सुर्ख लाल गर्म लोहे को पानी मे डालता है तब जो 'छन्न' की आवाज आती है उसी के वृहद रूप की कल्पना कर रहा था मैं। मगर सूरज आहिस्ता-आहिस्ता बिना किसी आवाज के पानी मे उतर गया। हां, समुद्र की लहरें जरूर बेसाख्ता उछल रही थी और दूर से बल खाती आती मेरे पांवो के पास दीवार से टकरा कर कुछ छींटें उड़ाती, फिर लौट जाती।

अंकल की सूरत फिर जेहन मे उभर आयी। फिर उनकी उद्दाम आत्मीयता का वह पूर्ण स्वरूप, गर्म दिखने वाले सूरज की तरह अंधेरे मे डूब गया....बे आवाज।

धूप उतरने पर समुद्र का रोमांच बढने लगा था, साथ ही फुटपाथ पर पैदल चलने वालों और सड़क पर सत्तर-अस्सी की स्पीड में चलने वाले वाहनों की आमदरफ्त बढ़ती चली जा रही थी। मेरे एक तरफ शोर मचाता, गरजता समुद्र था तो दूसरी तरफ इन्सानों की रेल-पेल। अब भी पता नही लग पाया कि लोग इतने तेज कदम चलते हुए घर से आ रहे हैं या घर लौट रहे हैं। अजीब है यह शहर।

दुश्चिन्ताओं के साथ, फैलते धुंधलके का अहसास बराबर बना रहा और जब वह चिंघाड़ता समुद्र खौफनाक लगने लगा तो मैंने सड़क की ओर अपना मुंह कर लिया समुद्र की तरफ पीठ।

दायी ओर फुटपाथ पर बनी बैंच पर एक वृद्ध सा दिखने वाला कोई व्यक्ति बैठा था। मेरे सामने से दो-तीन जोड़ी खिलखिलाहटें गुजर गयी मगर असंयत गति से चलता एक जवान बैंच के पास रुक गया।

"..... .. साला हमकू कुछ समझता ई नहीं है, बाप है कि साला कसाई है।"........उस नौजवान के मुंह से शब्द अनवरत वह रहे थे.... "रानी से अपुन का लफड़ा है तो उस साले का क्या जाता है, बाप नही है थानेदार है थानेदार... हरामी समझता है अपुन को....आक थू....साला....माई का जेवर बेचकर भी खा गया....कसाई...." वह जवान वही बैंच पर वृद्ध के पास फैल गया।

पीछे समुद्र मे किसी बड़ी लहर ने दीवार को टक्कर मारी थी, बहुत से छीटे मेरे सिर पर से होकर फुटपाथ पर गिरे।

वह जवान जो निश्चय ही शराब पिये हुए था फिर कुछ बड़बडाने लगा था। एक तिक्तता सी मेरे मन मे घुल रही थी। कल्पना मे मैंने उस शराबी जवान के बाप की सूरत भी गढ़ ली, मगर वह सूरत मेरी अपनी पहचानी हुई किसी भी बाप की सूरत से अलग थी, मगर पता नहीं क्यो सेवक अंकल की सूरत मेरे जेहन में फिर उभर आयी।

मैंने अपने बालो .को झटका देकर पीछे किया उसके साथ ही जैसे अंकल वाला प्रसंग भी पीछे झटक दिया—"हुँह।"

उस शराबी युवक की बड़बड़ाहट बंद हो चुकी थी और समुद्र का उफान भी धीमा पड़ गया था। सड़क पर लोग बदस्तूर आ जा रहे थे। समुद्र भी अब आहिस्ता-आहिस्ता सांस ले रहा था। मैंने आसमान की ओर आंखें उठायी, वे ढीठ बादल के टुकड़े जो मेरा पीछा कर रहे थे अब वहां नहीं थे, काले आसमान ने उन्हें बटोर कर अपने अस्तित्व मे मिला लिया था। □

उस लड़की के लिए

दिल्ली शहर और जून की गर्मी, उस पर बस का सफर। पसीने की दुर्गन्ध से व्यथित, मैं बस में खड़ा-खड़ा रह-रहकर अपने अधिकारियो को कोस रहा *था, जिन्होंने मेरी ट्रांसफर यहा की।* ..लेकिन यदि मैं यहां न आया होता तो यह कहानी कभी न लिखी जाती ... कहानी तो क्या यह एक घटना मात्र है और दुर्भाग्य से मैं इसका साक्षी हू।

अचानक पीछे से धक्का आया, मैं सम्भला। अपने पीछे खड़े व्यक्ति को हिकारत भरी नजरों से घूरने लगा, मगर दूसरे ही पल आखों ने अपना रंग बदला, वे उस चेहरे मे परिचय खोजने लगी, तभी वह बोला, "अरे, चन्दर तुम !"

मैंने पहचान लिया, *वह जोसेफ था। गर्मी, बस की घुटन, पसीने*

की सड़ांध, मैं सब कुछ भूल गया और जोसेफ से पिछले दो सालों का हिसाब देने-लेने में मशगूल हो गया।

बिशप कॉलेज में हम साथ-साथ पढ़े थे, हालांकि वह मुझसे उम्र में चार-पांच साल बड़ा था, मगर यह उसकी सौम्यता ही थी जिसने मुझे उसकी ओर आकर्षित किया। बिशप कॉलेज से ग्रेज्युएशन कर हम अलग हुए तो अब मिले। उसी ने बताया, कॉलेज से निकलते ही बैंगलोर की एक सप्लायर्स कम्पनी मे उसे ऑफिस सचिव की नौकरी मिल गई थी, मगर बेचारा मालिक की लड़की से इश्क कर बैठा; नतीजा, नौकरी से निकाला गया। मगर लड़की भी मजबूत कलेजे वाली मिली थी, दोनो ने जाकर चर्च मे शादी कर ली।

उसने रेलवे मे एप्लाई किया तो किस्मत से चयन भी हो गया और अब उसे यहां दिल्ली मे स्टेनोग्राफर के पद पर नियुक्ति भी मिल गई।

उस रोज बस से उतरते समय उसने मुझे अपना पता और घर आने की दावत दी।

जोसेफ के घर के बाहर खुले आगन मे एक पुराना पीपल था जिसके इर्द गिर्द कुछ जंगली मगर खूबसूरत फूलो वाली लताएं फैली हुई थी। अब हम रोज शाम को जरूर मिलते। उसकी पत्नी लिलि भी मुझसे काफी खुल गई। वह हमारी हर बहस में हिस्सेदार होती। हर सैर तफरीह में हमारे साथ होती थी। लिलि साफ दिल की लड़की थी। अपने पिता के घर की आरामगाह छोड़कर यहा दिन भर काम में लगना उसे अखरता जरूर था। वह झल्ला भी जाती। उस समय वह उदास हो जाती। मैं लाख हंसाने की कोशिश करता मगर असफल रहता। वह उठकर अपने कमरे में चली जाती। जोसेफ भी ऑफ हो जाता। सारे वातावरण में मायूसी भर जाती। ऐसे वक्त की खामोशी मुझे अन्दर तक हिला कर रख देती। मेरी कुर्सी की सीट पर काटे उग आते, मैं भी उठकर चला आता। मगर दूसरे ही दिन, फिर वही बहस, सैर, रौनक।

वक्त जिंदगी की बिसात पर हम मोहरों को कब, किस चक्रव्यूह की रचना के लिए, किस खाने में रख देगा, कौन जानता है। स्याह-सफेद हुए जा रहे दिनों मे एक वह दिन भी आया जहां से जोसेफ अपनी हर बाजी में पिछड़ता ही रहा।

एक दिन ऑफिस में ही मुझे टेलीफोन पर लिलि ने बताया—"जोसेफ का एक्सीडेन्ट हो गया।"

जोसेफ महीने भर अस्पताल में रहा। इस दौरान लिलि ने उसे एक पल भी अकेला नहीं रहने दिया। मैं लिलि के चेहरे पर शिकन ढूंढ़ने की कोशिश करता मगर सफल नहीं हो पाता। जिस सहजता से उसने यह सब झेला था, इस बात के मैं और जोसेफ दोनों कायल थे। मैं उसकी सेवापरायणता पर मुग्ध हो उठा। जोसेफ भी उसकी तरफ कृतज्ञता भरी नजरो से देखा करता था।

अस्पताल से घर आने तक जोसेफ का एक पांव बिलकुल बेकार हो चुका था। ऑफिस उसे रिक्शे पर जाना पड़ता।

एक शाम जब मैं उससे मिलने उसके घर पहुंचा तो मुझे द्वार पर ही रुक जाना पड़ा। एक अप्रत्याशित घटना जिसे एकबारगी देखकर मैं अपनी आंखो पर भी विश्वास न करूं, ऐसी घटना से मेरा वास्ता पडेगा मैं सोच भी नही सकता था। मेरे कान अन्दर से आती स्वर लहरियो में भीतर के तूफान का अंदाजा लगा रहे थे—"तमीज़ से बात करो जोसेफ, ये मेरे मित्र हैं। मैं इनके साथ बाहर चली जाती हूं तो इसमें बुरा क्या है। मैं तुम्हारी गुलाम नही, मैं तुम्हें जिन्दगी भर नही ढो सकती-समझे!"—ये फुंफकार भरी आवाज़ लिलि की थी। मैं अवाक् खडा था, इतने में एक अपरिचित, फौजी सा दिखने वाला व्यक्ति बाहर निकला, उसके पीछे लिलि, दोनों एक कार मे बैठकर चल दिए।

मैं मन्त्रबिद्ध यह सब घटित होते देखता रहो। मूर्छा टूटी तो पाया जोसेफ लॉन मे आरामकुर्सी पर सिर झुकाए बैठा है। उसके अन्तर की

व्यथा पिघल-पिघल कर आँखों से टपक रही थी। कुछ देर मैं उसके पास अर्थहीन मौन ओढ़े बैठा रहा, फिर बिना कुछ कहे-सुने चला आया। उस रात मुझे नींद नहीं आयी।

दूसरे दिन मैंने उसे बहुतेरा ढूंढा, वह नहीं मिला। तीसरे दिन मिला। घर में खिड़की के पास बैठा निस्सीम आकाश को सूनी आँखों से ताक रहा था, मैंने कंधे पर हाथ रखा तो वह यथार्थ में लौटा। पूछने पर बताया—"लिलि अपने सार्जेन्ट मित्र के साथ सैर को गई। एक गहरे उच्छ्वास के साथ भग्न हृदय से निकले ये वाक्य क्या माने रखते है, यह मैं जानता था। मुझे पता चल चुका था, लिलि सार्जेन्ट के साथ बरेली चली गई है, उसी के साथ रहेगी। आरामपसंद मुक्त समाज की देन थी लिलि, उसके लिए यह सब "जस्ट फॉर चेंज" से अधिक कुछ नहीं था। मुझे खतरा जोसेफ की तरफ से था।

मगर यह मेरे लिए फिर आश्चर्य की बात थी कि जोसेफ सप्ताह भर में सहज हो आया था या सहज हो जाने का दिखावा करने का अभिनय बखूबी कर लेता था लेकिन लिलि के जाने के बाद जोसेफ की चाकलेटी बात का मजा एक दिन भी नहीं आया।

मैं काफी समय बाद उस घटना को भूल पाया था मगर नियति न जाने क्या चाहती थी कि मुझे फिर इस चक्रवात में डाल दिया। रविवार की शाम, मैं उसके घर पहुंचा तो वह क्राइस्ट की तस्वीर के सामने खड़ा, शाम की प्रार्थना बुदबुदा रहा था...."अवर फादर, विच आर्ट इन हैवन, हलाऊड बी दाई योर नेम, दाई किंगडम...."

बस यही तक स्पष्ट सुनाई दिया। फिर सिसकियों का एक क्रम, जो काफी देर नहीं रुका। लगता था कमरे की हर चीज रो रही है।

पास में रखी एक मेज पर से उड़कर एक गुलाबी कागज मेरे पांवों के पास आकर गिरा। वह तार था, बरेली से आया था। जिसमें लिखे दो शब्द मेरी आंखों में चुभ रहे थे—

"लिलि एक्सपायर्ड"

—सार्जेन्ट सेम्युअल।

तल्ख और बेरहम हवाएं आंगन में खड़े पीपल के सूखे पत्तों को इधर से उधर उड़ा रही थी। कमरा एक अनजानी आग से धधक रहा था। बड़ी मुश्किल से मैं बाहर निकला। जोसेफ उस लड़की के लिए रो रहा था जिसने उस अपाहिज को ऐसे समय ठुकरा दिया जब उसे सहारे की अत्यधिक जरूरत थी। आज मुझे जोसेफ और पीपल के पेड़ में साम्य नजर आ रहा था, जो स्वयं सूख रहा है परन्तु भावनाओं की खूबसूरत मगर जगली लताएं आज भी उससे लिपटी है।

□

नंगी कब्र

"ये मेरी कब्र है!"—उस मायूस युवती ने दर्द भरे लहजे में कहा—"मुझे इस पर फूल चढाने हैं"—वह चारो ओर देखने लगी, मगर उस उजाड़ और खौफनाक रेगिस्तान मे दूर-दूर तक फूल तो क्या हरियाली तक का नामोनिशान नहीं था। वह सिसकने लगी।

मैंने बहुत मुलामियत से उसके कं कोधे छुआ। उसने आंसू बरसाती आखो से मेरी ओर ताका फिर नजरें झुका ली। हिचकियां लेती वह बोली— "यह मेरी कब्र है, कितनी सूनी और नंगी है। मैं इसे फूलो से ढक देना चाहती हूं, मगर यहा रेत है, रेतोली आधियां हैं। फूल नही ... हैं।"

मैंने उसके कंधे को थपथपाया, उसने एक आह भरी और कहने लगी— "ऐसा हर बार हुआ है, सदियो से होता आया है। एक बार

मैं अमीर बाप की बेटी थी और मेरा प्रेमी एक फूल बेचने वाला गरीब नौजवान था। हम दोनों के घर परिवार वाले इस मुहब्बत के खिलाफ थे। मेरे पिता ने अपनी अमीरी के बल पर उस फूल बेचने वाले को जेल भिजवा दिया और मैंने जहर खा लिया। मुझे दफना दिया मगर मेरी कब्र पर किसी ने फूल नहीं चढ़ाया और वह जो जमाने भर को फूल बांटा करता था। उस दिन जेल की दीवारों पर सिर पटक-पटक कर अपनी जान दे रहा था। मेरी कब्र सूनी ही रह गई।"

उसके आंसुओं को देख कर पिघलते हुए मेरे दिल ने कहा— काश कि इस लड़की के लिए मैं फूल जुटा पाता।

युवती ने एक बार फिर फूलों की खोज मे अपनी नजरों को दूर-दूर तक भटक जाने दिया मगर कुछ पलों की खोज के बाद नजरें निराशा के साथ लौट आयी।

युवती फिर रोने लगी— "एक था गलीज इन्सान जिसमे मैं अपना विश्वास ही नहीं ईमान भी हार बैठी थी। उसने मुझे कई "ख्वाब" दिखाने के बाद उस बाजार मे बेच दिया जिसे गुनाह और बेहयाई का बाजार कहते हैं। उस दिन मैं मर तो उसी क्षण गयी जिस क्षण मेरा सौदा हुआ लेकिन मेरे शरीर को उन लोगों ने मसल-कुचल कर खत्म किया।"— सीने पर हाथ रख कुछ पल सिसकारिया भरने के बाद उसने कहा— "इस बार भी मेरी कब्र पर किसी ने फूल नहीं चढ़ाये।"

वह कहती रही— "... और इस तरह शादी न कर पाने की वजह से बाप के हाथों, खुश न कर पाने की वजह से पति के हाथों, झूठा ईमान न रख पाने की वजह से समाज के हाथों मैं कई बार मारी गई हरबार यूं ही बेलिबास दफनाई गयी। मेरी कब्र की मिट्टी भी मुझे हिकारत की नजरो से देखती है क्योंकि मुझ बदनसीब के कारण उसे भी बेइज्जत किया गया उस पर न किसी ने दिया जलाया, न ही किसी ने फूल चढाये।"

मैं चाहता था कि वह शांत हो जाये, किसी भी तरह हो आसुओं की बाढ़ थम जाये। मैंने उसे बैठ जाने के लिए कहा, मगर फिर अपने कहे पर अफसोस करने लगा। यहां इस तपते हुए रेगिस्तान मे कहीं भी छांह नजर नही आयी कि जहां दो घड़ी बैठा जा सके।

मैं उसे मात्र सांत्वना ही दे सका। मैंने कहा—"तुम मरी नहीं हो, जिन्दा हो। तुम मर नही सकती क्योंकि तुम धरती की तरह महान् और पवित्र हो; दया और ममता की मूर्ति हो, तुम शक्ति हो, शक्ति का स्रोत हो........"

उसने अपने आसू रोक कर अनजानी निगाहो से मेरी तरफ देखा। मैं बोलता रहा—"तुम अक्षय हो, तुम ज्योति पुंज हो...." बहुत देर तक मै बोलता रहा, वह सुनती रही, बोलते बोलते मेरी सांस उखड़ गयी, गला खुश्क हो गया।

"यह सच नही है, तुम झूठ बोलते हो!"—वह अचानक बहुत जोर से चिल्लाई—"... तुम झूठ बोलते हो...."—इतना जोर से चिल्लाने से वह हाफने लगी उसका गला भी खुश्क हो रहा था।

मैंने पानी की तलब महसूस की, मगर वहां पानी कहां, अथाह रेत का समन्दर हमारी आखों के आगे पसरा पड़ा था। प्यास जब बहुत तल्ख हो गयी तो मैंने उसका हाथ थाम कर कहा—"चलो यहा से चलें पानी का कोई सोता, कोई चश्मा, कोई पोखर ढूंढे। बहुत प्यास जैसे गले में अटक कर रह गई है...."

मैंने सूखे होठों को जुबान की नमी से दिलासा देना चाहा, मगर गले के साथ जुबान तक बेइन्तहा खुश्की से सूख रही थी।

हम दोनों चलते रहे, चलते रहे, चलते रहे। उस कभी न खत्म होने वाले रेगिस्तान में—खामोश और परेशान। अपने पूरे वजूद में प्यास की शिद्दत समेटे हुए हम चलते रहे।

—"अब नही चला जाता"—हांफती और सोज भरी आवाज मे

उसने कहा और अपनी कातर निगाहें मेरे पांवों पर टिका दी। मैंने हौसला रखने और एक बार फिर कोशिश करने को कहा लेकिन उसके पांव जैसे पथरा गये थे। वह रेत पर गिर पड़ी—"हाय, मैंने मुस्कुराहटें जुटाने की कितनी-कितनी कोशिशें की। फूलों की तलाश मे कितना भटकी हूं बियाबानों मे, और कितने फरेबों से होकर गुजरी हूं, मगर किसी भी ख्वाब को हकीकत नही बना सकी...."—कहते-कहते उसने रेत पर एक करवट ली और मुझे सम्बोधित करते हुए बोली—"तुम जाओ, अपने लिये कोई रास्ता तलाशो जो तुम्हारी प्यास को पानी तक ले जा सके। मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो....जाओ...."

मैं उसे अकेला नही छोड़ना चाहता था और इधर प्यास के मारे जान हलक तक आ गई थी। मुझे गुस्सा आने लगा। मैंने एक बार फिर कोशिश की उसे उठा कर पांव पर खड़ा करने की परन्तु हाथ हटाते ही वह फिर रेत पर रेत की ही तरह पसर गयी।

मेरा गुस्सा बढ़ने लगा—"कितनी कमजोर हो; कैसी जाहिल लड़की हो, दो-चार कदम और नही चल सकती। तकलीफ की शिकायतें तो कर सकती हो जमाने पर तोहमतें लगा सकती हो, मगर स्थितियों से जूझ नही सकती...." मेरा गुस्सा अब नफरत मे तब्दील हो रहा था।

उसकी आखो मे बेबसी का दर्द अंगड़ाइयां लेता रहा। वह अपने सिर को दायें बायें हिलाती रही। बोलते-बोलते मैं भी बेदम हो गया था। मेरे घुटने अपने आप मुड कर रेत पर टिक गये।

वह अब भी धीरे-धीरे सिर हिलाती जा रही थी। होंठो से कुछ बुदबुदाहट फूट रही थी—"फूल....कब्र....प्यास....पानी...."—फिर अचानक उनका सिर दायीं ओर लुढक गया जिधर कि मैं बैठा था उसकी आखें मुझ पर स्थिर हो गयी, अपनी चेतना वह खो चुकी थी।

वह फिर मर गयी?

मैंने मुश्किल से अपने आपको उसके शरीर तक घसीटा, उसकी आंखो पर हाथ रख कर खुली पलको को बंद कर दिया।

मेरा सिर चकराने लगा था। मैंने आसमान की तरफ मुंह किया तो लगा सिर्फ मेरा सिर ही नही चकरा रहा, आसमान भी बहुत तेजी से गोल-गोल घूम रहा है, मेरी आंखे मुंद गयी।

न जाने कितना वक्त बीत जाने पर मेरी बेहोशी टूटी। जब आंखें खोली तो चारों ओर ठंडा और शांत आलम, बहुत धीमी हवा के पंखों पर तैर रहा था, चादनी बिखरी हुई थी। रेत चादनी के स्पर्श से और भी चमक उठी थी।

लड़की का ख्याल आते ही मैं झटके मे उठा। चारों तरफ देखने पर भी उस मासूम युवती का शरीर नजर नही आया। लेकिन उस स्थान पर, जहा वह अन्तिम नींद मे लेटी थी, आंधियो ने रेत का एक बड़ा ढूह बना दिया था, जिसने अनायास ही कब्र का रूप ले लिया था।

उस वक्त भी उस मासूमा की कब्र पर कोई फूल नही था।

पोर्ट्रेट की भूमिका

पार्टी पूरे रंग पर थी।

"हाऊ स्वीट"....मिनी स्कर्ट और टोपकट ब्लाउज पहने एक लड़की ने यह फिकरा सातवीं-आठवीं बार बोला था।

"मिसेज सिन्हा ने यह पार्टी किस खुशी में दी है।" मैंने विकास से सवाल किया, जो मेरा टेबल-पार्टनर था।

"मुझे भी पता नहीं।" विकास बुदबुदाया। वह फ्लोर पर थिरक रहे जोड़ो में से सिर्फ लड़कियो को—और लड़कियों मे सिर्फ उनकी [illegible] टांगो को देख रहा था।

सामने से मिसेज सिन्हा आती दिखाई दी। वह हमारी तरफ ही आ रही थी।

"क्या मैं आपको इस मनोरजन के लिए धन्यवाद दे सकता हूँ।"—मैंने औपचारिकता निभाई।

"थैंक्स ! आपके पास ड्रिंक नही आया अभी तक।"—मिसेज सिन्हा ने मेहमानदारी निभाई और पास वाली कुर्सी पर बैठ गई।

"इजन्ट मैटर।"

"नो तकल्लुफ।"—मिसेज सिन्हा ने कहा और हस दी। ड्रिंक आया। मुझे लगा मिसेज सिन्हा अब यहीं जमेगी।

"आप नही पिएंगी।"

"ले रही हूँ।"

"सिन्हा साहब नही दिखाई दे रहे हैं !"

"आज उनकी योगा की क्लास है।"

"आपने यह पार्टी किस खुशी में दी है।"

"हमारा बेटा बंटी, माई ओनली सन, मसूरी में पढता है ना, यू नो वह के. जी. मे पास हो गया है।"—कहकर मिसेज सिन्हा ने व्हिस्की का एक लम्बा घूंट भरा।

"ये पेंटर साहब आज किस मूड में है।"—मिसेज सिन्हा का इशारा विकास की ओर था।

विकास ने नज़रे घुमाई—"नही, मै एक स्केच बनाने की सोच रहा था, जिसमें टांगें ही टागें होगी, बेशुमार टांगें।"—वह गंभीरता से बोला।

मिसेज सिन्हा हंस पड़ी, मै मुस्करा दिया, विकास गंभीरता से टांगे ही देखता रहा। मैं मिसेज सिन्हा के दहकते जिस्म को सरसरी नजर से देख रहा था, जिसे घूरना भी समझा जा सकता था। वे त्रिकोण की साइड-लाइन की तरह मेरी ओर झुक गई थी। एक हल्के से रोमांच ने मेरी नसों में मीठी सी झुनझुनाहट भर दी थी।

मिसेज सिन्हा ने आवाज को काफी धीमा और रहस्यमय बना कर कहा—"आपका कल्चरल डेलीगेशन मॉरीशस कब जा रहा है !"

"क्यों ?"

"आप मुझे अपने साथ नहीं ले जा सकते। आप तो ऑर्गेनाइजर हैं, काफी पहुँच है आपकी।"—त्रिकोण को साइड लाइन इस बार, मेरी ओर एक सौ बीस डिग्री के एंगल मे झुक आयी।

मेरा मन वहा से उठने का हो रहा था, तभी 'हाऊ स्वीट' वाली लड़की उल्टियां करने लगी और वही फर्श पर बैठ गयी। मिसेज सिन्हा उसकी ओर लपकी, हालांकि वह खुद लडखड़ा सी गयी थी, उठते-उठते। फिर भी उन्होने उस लडकी को तत्परता से संभाला। अनुचरो को सफाई के आदेश दिए और लडकी को संभालते हुए उसे बाथरूम की ओर ले गयी।

अचानक न जाने क्या हुआ, विकास रोने लगा। मैं समझ नही पा रहा था कि वह जो इतना सजीदा होकर बैठा था अब उसे क्या हो गया।

"विकास, प्लीज टेल मी, क्या गडबड है।"

"मेरी बीवी प्रेगनेन्ट है, मैं घर से चला था तो वह भी उल्टियां कर रही थी।"

"डोन्ट माइंड।"—आओ घर चलते हैं।

"नही, मैं एक पोर्ट्रेट बनाऊंगा, जिसमें आदम और हव्वा होगे। आदम की पीठ में कूबड निकला हुआ होगा; और हव्वा का पेट फूला हुआ होगा।"—विकास नर्वस सा बोला। लगता था उसका मुंह कड़वा हो गया है। उसने बुरा-सा मुंह बनाया और फर्श पर थूक दिया।

मैं विकास की कल्पना के चित्र की भाव-भूमि मे डूबता उतराता रहा। व्हिस्की का नशा उस काल्पनिक चित्र को और भी विकृत कर रहा था।

"अच्छा—! पोर्ट्रेट भी बना लेना, घर तो चलो।"—मेरा नशा काफी झीना हो गया था, इतना कि विकास को तरीके से हैंडल कर सकूं।

"नही यार, वहां उसकी तकलीफ मैं देख नही सकता, मेरी बीवी छटपटाती बहुत है....पहली बार वह इस हालत को फेस कर रही है।"

तभी मिसेज सिन्हा लौट आयी—"साली बहुत पी गयी थी, मैं उसे नंगी कर वाथ-टब में डाल आयी हूँ।"—कह कर मिसेज सिन्हा फुसफुसाहट के स्वर में बोली— "यू सी, उसका पेट मुझे कुछ सख्त लगा, आई थिंक शी इज प्रेगनेन्ट !"

संगीत एक झन्नाटे के साथ टूट गया। दूसरे पल ही नयी डांसिंग धुन छेड़ दी गयी। थके हुए जोड़े गिरते-सम्भलते टेबलों तक पहुच रहे थे। नये जोड़े फ्लोर पर आ गए।

एक मेड-सर्वेन्ट तेज कदमों से मिसेज सिन्हा के पास आई, उनके कान में कुछ कहा, वे खड़ी होती हुई बोली—"एक्सक्यूज मी, आई एम जस्ट कमिंग, वो साली बेहोश हो गयी है।"

मैंने आंखें बंद कर ली। सिर भारी-भारी हो रहा था, लगा कि....पूरे हॉल में चमगादड़ें भर गयी थी। उनके भयानक स्वर का संगीत वातावरण पर छा गया था.... फडफडाहट... फडफडाहट। हॉल के फ्लोर पर चमगादड़ो की टांगों के बीच, मैं और विकास घिसट रहे थे। मजे की बात यह है कि विकास फिर भी जोर - जोर से हस रहा था। कही से मिसेज सिन्हा का हाथ आया, उस हाथ ने हमे एक तरफ खींच लिया....।

"मैंने हॉस्पीटल से एम्बुलेंस मगवाई है.... ।"— मिसेज सिन्हा लौट आई थी, उनका हाथ मेरे हाथ पर था। मेरी पेशानी पर पसीना चुहचुहा आया था।

"मुर्दाघर को गाड़ी क्यों नही मगवाई।"— विकास ने टोकते हुए व्यंग्य भरे लहजे मे कहा।

मिसेज सिन्हा ने विकास के कमेंट का बुरा नही माना। इधर-उधर देखकर बोली—"आओ उधर कमरे में चलकर बैठते हैं।"

"यही ठीक है"— विकास बोला।

मिसेज सिन्हा बुझ गयी—"यहां कुछ इजी नही लग रहा, आपसे कल्चरल डेलीगेशन के बारे मे बात करनी है, आइये आप

चलिए।" वे मुझसे कह रही थीं— "यहां मेरी आंखो के आगे उस बेहूदा लड़की का सफेद चेहरा घूम रहा है। लगता था उसके शरीर का खुन निचुड़ गया हो।"

कोई और वक्त होता तो मैं चला जाता परन्तु इस वक्त मैं असहज मनःस्थिति में था। मैंने विकास की ओर ताका। वह मुस्करा दिया, बोला—"हां-हा चले जाओ, लेकिन सुनो, मुझे उस आदम-हव्वा वाले पोर्ट्रेट की पृष्ठभूमि के लिए आइडिया मिल गया है—"मैं चित्र की पृष्ठभूमि पर खून के धब्बे बनाऊंगा और कुबड़े आदम व गर्भवती हव्वा के पांवों के नीचे कीड़े ही कीड़े, बेशुमार कीड़े कुलबुला रहे होंगे.... और सुनो एक और चित्र मेरे दिमाग मे बन गया है—वह भी बनाऊंगा ...एक बड़ी सी इमारत जिस पर बच्चों के कान्वेंट स्कूल का बड़ा सा साइन बोर्ड होगा, मगर वास्तव में वो मुर्दाघर होगा....।"

□

सवाल

....गालियों के घरेलू शब्दकोष की एक बानगी पेश करते हुए, सुबह-सुबह ही, एक मां ने अपने बच्चे को पीटा। बच्चा शायद स्कूल न जाने की जिद पर अड़ा था और रोये जा रहा था। मां गालियों के क्रम में अपनी ही औलाद को 'हरामी' सिद्ध करने पर आमादा थी....

इस गली के हर एक घर में हर एक बात या घटना की शुरूआत इसी सांस्कृतिक तरीके से होती थी। चोर नजरों से इन घटनाओं के साक्षी बनते हुए हम, *यानि मैं और मीरा* जल्दी जल्दी इस गली को पार करते। यूं तो नेहरू पार्क तक पहुँचने के और भी कई रास्ते हैं लेकिन 'भले व्यक्तियों' की निगाहों से कतरा कर निकलने के मामले में यह संकड़ी गली सुरक्षित मार्ग सिद्ध होता है।

कल मैं फिर मीरा को नेहरू पार्क ले गया था। रास्ते भर वह अपने आप मे सिमटती चलती रही।

पार्क मे 'मोरनिंग वाक' को भारतीयो की आदि परम्परा सिद्ध करते हुए कई वृद्ध सज्जन दिन के आठ बज जाने के वावजूद भी जमे थे और परमाणु युद्ध से लेकर, राशन के गेहूं में ककर की मिलावट जैसी समस्याओं को हल करने के लिए चर्चा करने में मशगूल थे।

यहा भी एक 'सुरक्षित क्षेत्र' की तलाश हमें हमेशा से ही रही है लेकिन नेहरू पार्क का कोई भी कोना 'निषिद्ध क्षेत्र' तो है नही, इसलिए भीड़भाड़ से दूर जो भी जगह दिखती हम लपक लेते।

पेड पर चढ़ती हुई गिलहरी को मीरा सूनी-सूनी नजरों से ताक रही थी। इस पोज मे वह किसी भी फिल्म अभिनेत्री से कत्तई कमजोर नही ठहरती थी। मैंने एक तिनका उठाकर हल्के से मीरा के कान से छुआ दिया वह चौंक कर थोड़ा उचक सी गई और सवालो से सराबोर दो आखें मेरे चेहरे पर टिक गई। मैंने आहिस्ता से उसका हाथ अपने दोनो हथेलियों में रख कर हौले से दबा दिया।

"मीरा कोई नयी बात तो नही हुई'—मैंने पूछा। होठो को जरा सा खोलकर उसने कहा—'आखिर कब तक इसी तरह चलता रहेगा ?"

· × × ×

... कब तक ? कब तक ?—कमरे की दीवारें, छत, मेज-कुर्सी सभी एक यही सवाल दोहराती रही। रात ही सवालिया हो उठी थी। सोच के घेरे मे भी एक मात्र सवाल यही था—'यह दूरी कब तक हम दोनो के बीच अपने दांत किटकिटाती रहेगी ?'

मीरा से मेरी सगाई दो बरस पहले हुई थी।, इन दो बरसों के चौबोस महिनो मे हम दोनो कोई सात-आठ बार ही मिलने के ढग से

मिल पाए थे जबकि दिल की दो-चार बातें की हो। एक-दो बार तो ऐसा भी हुआ कि बस्ती से नेहरू पार्क और नेहरू पार्क से बस्ती तक बिना एक शब्द भी बोले, बेमतलब चक्कर हो गए।

मैं सोचता हूं कि सारी बातें सिरे से ही गलत और उलझी हुई है। मैंने मना किया था कि अभी से सगाई-ब्याह के फेर में मुझे न फंसाया जाए परन्तु मां और बाबूजी नहीं माने तो नही ही माने। उनका तर्कजाल बहुत मजबूत था कि—'तुम्हारी सगाई हो जाएगी तो तुम्हारी बहिन के लिए रिश्ता तय होते देर नहीं लगेगी।' जैसे मैं नही हुआ बहन के ब्याह का शर्तनामा हो गया। मैं क्या कर सकता था, गर्दन झुकाए रहा। एक अनकमाऊ, बी. ए. मे पढ़ने वाला लड़का और कर भी क्या सकता है।

मर्जी के खिलाफ हुई इस सगाई के कारण पहले मैं ही मीरा से खिचा-खिचा रहता सच कहूँ तो उस पर खार खाए रहता। फिर और भी समाजू कारण इस 'खार' को और खारा करते रहे।

कल जिन तीखी नजरों मे जो दहकते सवाल मीरा मेरे अन्तस में बिखरा गयी उसकी गर्मी से मैं तमाम रात झुलसता रहा और इस आग मे तपता ही यह निर्णय लिया कि कल सुबह मां से बात करूंगा।

× × ×

सुबह बात करने का मुहूर्त ही नही निकला, इससे पहले ही भाभी ने बाजार से दवाइया खरीद लाने के लिए परचा और पाच का नोट पकड़ा दिया।

भाभी पर मुझे हमेशा दया आती है। उनका ये कांटे सा सूखता शरीर चार साल पहले ऐसा न था, जब वो इस घर आई थी। दूसरे बच्चे के बाद तो वह लगातार बीमार रहने लगी थी। वैसे भाभी शुरु से ही अनमनी सी रहती थी। शादी के बाद उनके पीहर वाले उन्हे

अपने यहां रखने को तैयार न थे और इस घर मे मां अक्सर ऊंची-नीची बात सुना ही देती थी। भैया भी छह माह पहले तक बेरोजगार ही थे तो उनकी बेकारी का टसका भी भाभी पर ही उतरता।– 'इस तरह आटा बिखेरती हो, कोई अपने घर से नही लाई या पति तुम्हारा कमा के नही रख गया सो इस कदर बिखेरा करती हो।' परात से जरा सा आटा उछल जाने पर मा के ये 'मीठे बोल' भाभी पी जाती थी।

भाभी की यह हालत देख, मैं खुद कई बार अपने-को अन्दर-अन्दर कांपता महसूसता था। क्या हर घर मे ऐसा होता है, या मेरे ही घर पर कोई प्रेत-साया है, पीड़ा में-पगे ये चेहरे मेरे इर्द-गिर्द ही क्यूं घेरा डाले है ? उत्तर नही मिलता कही।

दवाई के परचे को जेब में रख-बाहर निकल आया। बाजार में एक कंगन स्टोर पर मीरा नजर आयी,-मैं कतरा कर निकल गया।

घर आया तो तल्ख आवाज में मां के किसी से बतियाने के भन-भनाते-स्वर दरवाजे पर ही सुनाई पड़े। मगर मां के पास कोई नही था लगता था वह हवा-मे विलीन किसी अदृश्य दुश्मन से लड़ रही-थी। मैं सीधे अपने कमरे में चला गया।

खाना खाते वक्त, मैं मां के तेवर के बारे मे ही सोच रहा था, कि मां उफनती हुई सी बोली—"कुछ खबर है तुम्हें ?"

"किस बात की।" मैं अचानक दागे गए इस प्रश्न से विचलित हो गया था।

"तुम्हारे ससुरालवाले इधर-उधर क्या-क्या कह रहे हैं।"

"क्या कह रहे हैं।"—रोटी का कौर मेरे गले मे अटक गया था।

मां बोली—"मुझे तो सरस्वती ने कहा तब पता चला...." मैं चुप रहा, 'वो लोग कह रहे थे कि ब्याह-जोग तीन-तीन बेटियों को

घर पर बिठा रखा है इतने बडे परिवार मे तो हमारी बेटी 'साबुन-कपड़े' को तरस जाएगी। बोल उनकी बेटी अभी इस घर आयी नही और वे ऐसी ओछी बातें करते हैं, शरम नही आई उन्हें बेटी के ससुराल को भांडते हुए....हैं.... !"

मेरे दिमाग मे झनझनाहट होने लगी। उफन पड़ा मैं—"उनकी हिम्मत कैसे हुई ऐसी बातें कहने की .. वहां तो राज कर रही है ना उनकी बेटी तो रखे अपनी लाडेसर को छाती से चिपका कर, मैं हरगिज हरगिज नही करूंगा शादी उससे........क्या समझते हैं वे अपने आपको.... ।"

अपनी ही आवाज से मेरी सांस उखड़ गयी थी। मैं कमरे में चला आया। सिर पर कोई अदृश्य हाथ हथोडे चला रहा था। कोई अज्ञात कह रहा था कि—तुम गलत हो, तुम्हारा समाज गलत है—घर, परिवार, रिश्ते सभी फास की तरह दिमाग में चुभ रहे थे।

मैं घर से बाहर निकल आया। बाजार और तमाम सड़कें बदरंग हो रही थी। चारों ओर आग लगी थी, मैं कही भी नही ठहर सका। पावों में टनों बोझ भरा था फिर भी चलता रहा।

बहुत सी पुरानी बातें सिर में चकराती रही। कभी किसी संकट में फंसे अपने मित्र को यह बात मैंने ही कही थी कि—'आदमी चाहे तो नदी बन सकता है, नदियां अपना रास्ता खुद बनाती है।'

आज सोचता हूं कि वो लोग कौन होते हैं जो नदी बनते हैं, क्या सभी लोग चाहने पर नदी बन सकते हैं, क्या नदी बनना मेरे बस में है ???—सवालों की कई चीलें मेरे सर पर मंडराती रही।

☐